खण्ड 2

ब्रह्मसूत्र वादरायण शांकरभाष्य चतुःसूत्री

इकाई 3 जिज्ञासाधिकरण (ब्रह्मसूत्र 1.1.1)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

- अथ शब्द के अर्थ को समझ सकेंगे
- वेदान्त के अनुबन्ध चतुष्टय को जान सकेंगे।
- वेदान्तविद्या के अधिकारि के स्वरूप को जान सकेंगे।
- साधन चतुष्टय के स्वरूप को जान सकेंगे।
- अतः शब्द के अर्थ को समझ सकेंगे।
- ब्रह्म के स्वरूप को जान सकेंगे ।
- जिज्ञासा शब्द के अर्थ को समझ सकेंगे।

- ब्रह्मजिज्ञासा के स्वरूप का ज्ञान कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारतीय दर्शनों में वेदान्तदर्शन का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वेदान्तदर्शन साक्षात् उपनिषद् दर्शन है। वेदान्त दर्शनों में भी अद्वैत वेदान्त दर्शन सर्वाधिक लोकप्रसिद्ध दर्शन है क्योकि अद्वैत वेदान्त दर्शन में साक्षात् ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप का प्रतिपादन आचार्य शंकर ने किया है। अद्वैत वेदान्तदर्शन के तीन महत्त्वपूर्ण प्रस्थान हैं उपनिषत् श्रुतिप्रस्थान, श्रीमद्भगवद्गीता स्मृतिप्रस्थान तथा ब्रह्मसूत्र सूत्र प्रस्थान या न्याय प्रस्थान के रूप में प्रसिद्ध है। ब्रह्मसूत्र चार अध्यायों में विभक्त है, समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय तथा फलाध्याय। अध्याय पादों में विभक्त हैं। चारों अध्यायों में विभक्त हैं, प्रत्येक अध्याय में चार चार पाद हैं। पाद पुनः अधिकरणों में विभक्त हैं अधिकरण सूत्रों में अस प्रकार ब्रह्मसूत्र के प्रथमाध्याय समन्वयाध्याय के प्रथम चार सूत्र चतुःसूत्री के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें जिज्ञासाधिकरण, जन्माद्याधिकरण, शास्त्रयोनित्वाधिकरण तथा समन्वयाधिकरण। चारो अधिकरणों में यद्यपि सम्पूर्ण ब्रह्मसूत्र के प्रतिपाद्य विषय का विवेचन है जिनका आगे के सूत्रों में विस्तार किया गया है। आचार्य शंकर नें इनकी अद्वैत मूलक व्याख्या करके अद्वैत तत्त्व को प्रतिष्ठित किया है।

अद्वैत दर्शन का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है **द्विधाईतं द्वीतम, द्वैतस्य भावो द्वैतम, द्वैतम् भेदः भेदो नास्ति यत्र तदद्वैतम्।** अर्थात् वेदानामन्तः शिरोभागः वेदान्तः। यद्यपि अद्वैत वेदान्त दर्शन को मूर्त रूप प्रदान करने का श्रेय आचार्य शंकर को जाता है, फिर भी अद्वैत दर्शन के बीज वैदिक संहिताओं में भी निहित है। उत्तरवर्ती दार्शनिक साहित्य में उसकी परम्परा चली आई है। आचार्य शंकर ने वेदान्त के तीनों प्रस्थानों में इस अद्वैत तत्त्व को सप्रमाण उपस्थापन किया है। वेदान्त के न्यायप्रस्थान ब्रह्मसूत्र सूत्र का प्रथम सूत्र है अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। इस सूत्र में ब्रह्मविचार की प्रतिज्ञा की गई है। आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने से पूर्व अध्यास भाष्य लिखा है जिसमें जगत की मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया है। परन्तु अद्वैतवेदान्त में मिथ्यात्व का अर्थ सर्वथा अलोक या अभाव रूप नही है अद्वैत में मिथ्यात्व का अर्थ सत् असत् एवं सदसत् से भिन्न अनिर्वचनीय है। प्रतीति या बाध का होना ही जगत् का मिथ्यात्व है। ब्रह्म जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। जगत ब्रह्म का विवर्त है। जगत् के इस स्वरूप के ज्ञान के अनन्तर जिज्ञासु अधिकारी को ब्रह्म की जिज्ञासा होती है अतः अध्यास भाष्य के अनन्तर आचार्य ने ब्रह्मजिज्ञासा के प्रतिज्ञा प्रतिपादक अथातो ब्रह्म जिज्ञासा इस सूत्र की व्याख्या की है।

3.2 अथातो ब्रह्म जिज्ञासा

अनादि अनन्त काल से ही जीवों के कल्याण के लिये वेदान्तशास्त्र का आरम्भ हुआ है। साधन चतुष्टय सम्पन्न अधिकारि को जब तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के द्वारा जीवब्रह्म की एकात्मता का ज्ञान होता है तब सकल संसार के अनर्थ रूप प्रपञ्च का कारण सहित मिथ्यात्व निश्चय हो जाता है। तथा अविद्या के निवृत्ति से उसका अध्यास निवृत्त हो जाता है। यही उसका मोक्ष है। अविद्यातमयोः मोक्षः सा च बन्धः उदाहृतः। वस्तुतः श्रुति प्रतिपादित ब्रह्म असंग है तथा अध्यास के बिना देहेन्द्रियादि के साथ आत्मा की प्रतीति नही हो सकती देहेन्द्रियादि के सम्बन्ध से ही आत्मा में ब्रह्मभिन्नत्वाभिन्नत्व नित्यत्वानित्यत्वादि का संशय होता है। तथा संशय अध्यासादि की निवृत्ति ज्ञान से होती है। जिससे मोक्ष रूप परमप्रयोजन सिद्ध होता है। अतः सभी

उपनिषदों का तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्म के प्रतिपादन में है। अतः सकल विरोधाभासों का निराकरण पूर्वक समन्वय प्रतिपादन करना तथा ब्रह्मात्मैकत्व के साधनों का प्रतिपादन करना ही शास्त्र का प्रयोजन है। इस लिये प्रकृत सूत्र मे ब्रह्मविषयक जिज्ञासा की प्रतिज्ञा की गई है। प्रकृत सूत्र में चार पद हैं अथ, अतः, ब्रह्मजिज्ञासा तथा जिज्ञासा जिनका विचार आचार्यशंकर ने प्रकृत सूत्र के भाष्य में किया है।

3.3 अथ शब्द के अर्थ

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा यह ब्रह्मसूत्र का प्रथम सूत्र है इस सूत्र में अथ अतः ब्रह्मजिज्ञासा ये तीन पद हैं। अथ पद सूत्र का प्रथम पद है। अथ शब्द के अनेक अर्थ शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ। अर्थात् ओंकार और अथ शब्द श्रवण मान से मङ्गल कारक है। अमर कोश के अनुसार मङ्गलानन्तर्यारम्भ प्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ। अर्थात् अथ शब्द मङ्गल वाचक है आनन्तर्यवाचक है, आरम्भवाचक है, प्रश्न वाचक है, कार्त्स्न्य वाचक है तथा प्रकृत में अथ शब्द के क्या अर्थ है इस विषय में विचार किया गया है। अतः अथ शब्द के अनेक अर्थ प्रसिद्ध है परन्तु प्रकृत में अथ शब्द आनन्तर्य का वाचक है न कि आरम्भ का। आरम्भ का वाचक अथ शब्द को स्वीकार किया जाये तो ब्रह्मजिज्ञासा का आरम्भ ऐसा अर्थ होगा। वस्तुतः ब्रह्मजिज्ञासा का आरम्भ नही किया जा सकता। जानने की इच्छा होने पर ज्ञान के लिए प्रयत्न का प्रारम्भ किया जा सकता है किन्तु स्वयं की इच्छा का प्रारम्भ प्रयत्नाधीन नहीं है। इसलिए अथ का अर्थ प्रारम्भ नहीं है इसलिये अथ शब्द का अर्थ आरम्भ है यह नही स्वीकार किया गया है। पुनः अथ शब्द मङ्गल का द्योतक है ऐसा स्वीकार करने पर वाक्य के साथ संगति नही हो सकती अथ शब्द का अन्य अर्थ में प्रयोग होने पर भी वह मंगल सूचक हो जाता है। अतः यहां अथ शब्द मङ्गल का वाचक भी नही माना गया है। अथ शब्द के श्रवणमात्र से मङ्गल का हो जाता है तब अलग से मङ्गल वाचक मानने की कोई आवश्यकता ही नही है। इस लिये अथातो ब्रह्म जिज्ञासा मे प्रयुक्त अथ शब्द आनन्तर्य का वाचक है। यह निष्कर्ष रूप से आचार्य शंकर ने अथ शब्द का अर्थ आनन्तर्य स्वीकार किया है। यहाँ पर यह जिज्ञासा होती है कि किसके अनन्तर ब्रह्मजिज्ञासा होती है। इस विषय में आचार्यों में मतभेद हैं कुछ वैष्णवाचार्य एवं मीमांसकों का यह मत है कि धर्म जिज्ञासा के अनन्तर ब्रह्मजिज्ञासा होती है। अतः आनन्तर्य को इस रूप में स्वीकार किया जाये कि ब्रह्म जिज्ञासा से पूर्व धर्म जिज्ञासा अपेक्षित होती है। तथा धर्मजिज्ञासा के अनन्तर ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये। परन्तु आचार्य शंकर ने इस पक्ष का सर्वथा निराकरण किया है। आनन्तर्य का अर्थ इस प्रकार स्वीकार करना ठीक नही । क्योंकि धर्म जिज्ञासा के पूर्व भी ब्रह्म जिज्ञासा हो सकती है। शास्त्रों में जहां कर्म की विवक्षा होती है वहां स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते हैं कि यज्ञादि कर्मानुष्ठान में किस कर्म के अनन्तर किस कर्म का सम्पादन करना चाहिये अर्थात् अमुक कर्म के बाद अमुक कर्म होना चाहिये। परन्तु धर्म जिज्ञासा के बाद ही ब्रह्मजिज्ञासा हो इस क्रम के लिये कोई श्रुति प्रमाण नहीं है। मीमांसकों का यह सिद्धान्त है कि स्वाध्याय का मुख्य तात्पर्य कर्मविषयक ज्ञान प्राप्त करना है क्योंकि श्रुति में यह स्पष्ट आया है कि यज्ञ, दान, तपस्या से ब्राह्मण उस आत्मा को जानने की चेष्टा करते हैं। तमेतं वेदानुवचनेन ब्रह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन इति। परन्तु आचार्य शंकर के अनुसार यद्यपि यह तपस्या और दान बुद्धि की शुद्धता के लिए उपयोगी है फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि इन्हीं के द्वारा वैराग्य उत्पन्न हो। पूर्व जन्म के संस्कार के कारण भी वैराग्य उत्पन्न हो सकता है। और उसके अनन्तर ब्रह्मजिज्ञासा हो सकती है। श्रुति

में स्पष्ट कहा है कि अन्य किसी कारण से अर्थात् ब्रह्मचर्यादि से ही संन्यास ग्रहण करें। यदि वेतरथा ब्रह्माचर्यादेव प्रव्रजेत। शास्त्रों में प्रतिपादन है कि मनुष्य को तीन ऋणों देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण से मुक्त होने पर ही संन्यास लेना चाहिए उसका अर्थ यह है कि ऋण का बंधन उसी को होता है जो गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर जाता है। यदि बिना गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किये कोई सन्यास ले लेता है तो उसे ऋण का बन्धन नहीं होता। मीमांसक का भी यह मत है कि गृही भूत्वा वनी भवेत् बनी भूत्वा प्रव्रजेत। यदहरेव विरजेत तदबरः प्रव्रजेत अर्थात् जिस क्षण वैराग्य हो उसी क्षण संन्यास लेना चाहिए। जो वाक्य विना स्वाध्याय के संन्यास का विरोध करते हैं अनधीत्य द्विजो वेदान् उनका भी यही अर्थ है जिनका मन शुद्ध नहीं हुआ है और जिन में वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ है उनको संन्यास नहीं लेना चाहिये। मीमांसक श्रुति का अर्थ पाठक्रम आदि के आधार पर क्रम निश्चित करते हैं तथा उनके अनुसार धर्मजिज्ञासा और ब्रह्मजिज्ञासा में मुख्य और गौण का संबंध है परन्तु आचार्यशंकर के अनुसार इसमें कोई प्रमाण नही है। और न ही कही इस विषय में उल्लेख प्राप्त होता है कि इस कर्म के सम्पादन के अनन्तर यह जिज्ञासा करनी चाहिये या यह जिज्ञासा होती है। पुनः धर्मजिज्ञासा और ब्रह्मजिज्ञासा में क्रम विवक्षा नही है इस विषय में आचार्य शंकर अत्यन्त प्रबल तर्क प्रस्तुत करते हैं। जिनके द्वारा धर्मजिज्ञासा और ब्रह्मजिज्ञासा में मौलिक भेद सिद्ध होता है तथा मीमासकों के इस मत का भी निराकरण हो जाता है कि धर्मविचार के अनन्तर ब्रह्म विचार करना चाहिये तथा धर्मविचार और ब्रह्मविचार में गौणमुख्य संबंध है इस मत का भी निराकरण हो जाता है। जैसे प्रथम दृष्ट्या धर्मजिज्ञासा और ब्रह्मजिज्ञासा के फल में भेद है। धर्मविचार का फल है ऐहिक और आमुष्मिक उन्नति परन्तु ब्रह्मज्ञान का फल निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति ही फल है तथा मोक्ष फल किसी कर्म पर निर्भर नहीं करता। पुनः धर्म विचार या यज्ञादि कर्म कर्म सापेक्ष होने के कारण उनका फल भव्य या भावी होता है कर्म से अपूर्व, अपूर्व से फल निहित होता है परन्तु ब्रह्मज्ञान में क्रम या अपूर्व विवक्षित नही होता क्योकि ब्रह्म सिद्ध वस्तु तथानित्य है। नित्य होने से क्रम से ब्रह्म विचार के फल में क्रम सापेक्ष नही होता। पुनः धर्मविचार प्रतिपादक श्रुतियां मनुष्य को धर्म या कर्म में प्रवृत्त करती हैं। इसके विपरीत ब्रह्मविचार प्रतिपादक श्रुतियां कैवल्य या ब्रह्म ज्ञान का प्रतिपादन करती हैं। तथा ब्रह्म ज्ञान में कोई क्रम अपेक्षित नही है। जैसे प्रत्यक्षादि प्रमाणों से वस्तु मात्र का ज्ञान होता है न कि कर्म करने को प्रेरित करते हैं। पुनः ज्ञान मनुष्य की इच्छा पर निर्भर नहीं करता अर्थात् ज्ञान वस्त्वाश्रित होता है जब कि धर्म मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करता है। अर्थात् धर्म पुरुषाश्रित होता है। यद्यपि ज्ञान केवल प्रमाणाश्रित होता है उपनिषदों में ऐसे वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है जिनसे यह ज्ञान होता है कि ब्रह्मज्ञान उपासना आदि क्रियाओं पर निर्भर करता है। आत्मावारे दृष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः विदिध्यासितव्यः इयादि परन्तु उपासनादि क्रियाये साधक जिज्ञासु अधिकारि को ब्रह्मज्ञान के लिये उपयुक्त बनाने में ही सार्थक हैं न कि ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करने मे हैं। अतः ब्रह्मजिज्ञासा से पूर्व धर्मजिज्ञासा आवश्यक नहीं है तब पुनः जिज्ञासा होती है कि आनन्तर्यार्थक अथ शब्द ग्रहीत है जिसका अर्थ धर्म जिज्ञासा नही हो सकता तब अथ शब्द के आनन्तर्यार्थ से क्य ग्रहीत है। अर्था अथ शब्द का प्रयोग किसके लिये आनन्तर्यार्थ में किया गया है। इस समाधान प्रस्तुत करते हैं आचार्य साधनचतुष्टय के अनन्तर अर्थात् अथशब्द का अर्थ यहां साधन चतुष्टय ही ग्राह्य है। वे साधन चतुष्टय हैं – नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रार्थ फलभोगविराग, शमदमादिसाधनसम्पत् और मुमुक्षुत्व। ये चार साधन ब्रह्मजिज्ञासा के पूर्व होना आवश्यक हैं। इस साधनचतुष्टय के रहने पर ही ब्रह्मजिज्ञासा होती है। साधनचतुष्टय के बिना ब्रह्मविचार या ब्रह्मज्ञान केवल शब्दज्ञान मात्र रहता है। यहां स्पष्ट कर देना

आवश्यक है कि ब्रह्मज्ञान केवल बौद्धिक विलक्षणता पर ही निर्भर नहीं करता है ब्रह्मज्ञान को हृदयंगम करने के लिये अर्थात् ब्रह्मज्ञान को साक्षात् अनुभव करके उसका फल भोगने के लिये उपर्युक्त चारों गुणों की आवश्यकता है। आजकल ब्रह्मसूत्र उपनिषद आदि ग्रंथ पढ़ने और समझने के बाद भी ब्रह्मज्ञान नहीं होता है तो उसका एक मात्र कारण उपर्युक्त गुणों का अभाव ही है। ब्रह्मज्ञान के लिये नैतिक जीवन मात्र भी पर्याप्त नहीं है।

3.4 साधनचतुष्टय

जीवमात्र के पुरुषार्थ प्रयोजन अर्थात् जीवन के लक्ष्य चार हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इस में मोक्ष को परमपुरुषार्थ माना गया है। इस मोक्ष का साधन एकमात्र जीवब्रह्मैक्य ज्ञान माना गया है शांकर वेदान्त में ज्ञान का अधिकारी वही है, जो साधनचतुष्टय से सम्पन्न हो। क्योंकि साधनचतुष्टय के विना ज्ञान का उदय होना सर्वथा असम्भव है। अतः साधनचतुष्टय के स्वरूप का विचार अपेक्षित है। साधन चतुष्टय अर्थात् ब्रह्मविचार के चार साधन, जिनके होने से प्रमाता वेदान्तविद्या का अधिकारी होता है। तथा जिसके अनन्तर ब्रह्म की जिज्ञासा होती है। वे चार साधन हैं नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहमुत्तरार्धफलभोगविराग, शमदमादिषट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व। इनमें प्रथम साधन है साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविराग शमादिषट्क सम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि।

3.4.1 नित्यानित्य वस्तु विवेक

नित्यानित्यवस्तुविवेक का अर्थ है विवेकज्ञान। अर्थात् नित्य क्या है और अनित्य क्या है इसका भेद ज्ञान ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। नित्य अनित्य वस्तुओं के सामान्य ज्ञान का नाम विवेक है अर्थात् ब्रह्म ही एक नित्य वस्तु है, ब्रह्म से भिन्न सभी वस्तुयें अनित्य है, ऐसा ज्ञान होना ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। आत्मा की नित्यता श्रुतियों से सिद्ध है। श्रुति कहती है नित्य विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्, अर्थात् आत्मा नित्य विभु सर्गत तथा सूक्ष्म है। अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणः। वह अजन्मा है नित्य है शाश्वत है तथा अनादि है। एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति। अर्थात् ब्रह्म ही एक सद्वस्तु है जिसे विद्वान अनेक प्रकार से जानते हैं। इत्यदि श्रुतियां ब्रह्म के नित्यत्व को सिद्ध करती है। ब्रह्म से अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीयमान पदार्थ जगतप्रपञ्च है वे सब अनित्य हैं। जगत् प्रपञ्च की अनित्यता भी श्रुतियों से सिद्ध है। श्रुति कहती है यो वै भूमा तदमृत यदल्पं तन्मर्त्यम्। आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत् किञ्चन मिषत्। नेह नानास्ति किञ्चन इत्यादि। अर्थात् ब्रह्म की नित्यता और जगत् की अनित्यता दोनों ही श्रुति सिद्ध है। अतः इन दोनों ब्रह्म की नित्यत्व और जगत् के अनित्यत्व का ज्ञान होना ही विवेकज्ञान है। तथा विवेकज्ञानवान प्रमाता ही वेदान्तविद्या का अधिकारी का प्रथम लक्षण है। नित्यानित्यविषयक विवेकज्ञान ब्रह्मजिज्ञासा का प्रथम साधन है। द्वितीय साधन है इहमुत्तरार्ध फलभोगविराग या वैराग्य। नित्यानित्यवस्तुविवेकस्तावद् ब्रह्मैव नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यमिति विवेचनम्

3.4.2 इहमुत्तरार्ध फलभोगविरागः

विराग या वैराग्य। वैराग्य से तात्पर्य है इस लोक में जो भी भोग्य पदार्थ तथा तज्जन्य सुख तथा सुख के साधनभूत भूत भौतिक पदार्थ हैं वे सभी कर्म जन्य हैं, कर्मजन्य होने से अनित्य हैं। भूतभौतिक पदार्थ आज हैं कल नष्ट हो जायेगे। आज जो वस्तु दिखती है, वह कल नही रहेगी। अतः इनसे जन्य जो भी सुख आज प्रतीत हो रहे हैं वे कल

नही रहेगा। अर्थात् भूतभौतिक पदार्थ तथा तज्जन्य सुख अनित्य हैं इसी प्रकार यज्ञादि कर्मजन्य स्वर्गादि सुख भी कर्मजन्य होने से अनित्य है। क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। जब तक यज्ञादिकर्मजन्य अपूर्व है तब तक अपूर्व जन्य सुख रूपफल स्वर्गादि सुख हैं अपूर्व के समाप्त होते ही तज्जन्य स्वर्गादि सुख भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार निश्चय करके इहलौकिक और पारलौकिक इन दोनों प्रकार की वस्तुओं में घृणा के भाव हो जाने को वैराग्य कहते हैं। अतः लौकिक तथा अलौकिक वस्तुओं तथा तज्जन्य सुखों के अनित्य होने के कारण उन लौकिकालौकिक वस्तुओं से विरक्ति ही वैराग्य नामक ब्रह्मविचार या ब्रह्म ज्ञान के द्वितीय साधन है। तृतीय साधन है शमादिषट्सम्पत्ति।

ऐहिकानां स्रक्चन्दनवनितादिविषयभोगानां कर्मजन्यतयानित्यत्ववदामुष्मिकाणामप्यमृतादि विषयभोगानामनित्यतया तेभ्यो नितरां विरतिः इहामुत्रार्थफलभोगविरागः। वेदान्तसार

3.4.3 शमादिषट्सम्पत्ति

सम्पत्ति शब्द का अर्थ होता है स्वामित्व या अधिकार। अर्थात् शमदमादि छः विषयों में पूर्ण अधिकार रखना ही षट् सम्पत्ति है। वे षट्सम्पत्ति हैं शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा तथा समाधान। साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविराग शमादिषट्कसम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि।

3.4.3.1 शम

जिस प्रकार भूख प्यास आदि को शान्त करने के साधन अन्न जलादि हैं और भूखे प्यासे का मन बार बार अन्न जल की ओर दौड़ता रहता है। उसी प्रकार तत्वज्ञान के साधन श्रवण मननादि हैं। उन श्रवणमननादि को छोड़कर अन्य जो सांसारिक विषयों में बार बार दौड़ कर जाते हुए अन्तःकरण की वृत्ति को या मन को संयम के द्वारा एक अधिष्ठान आलम्बन में रोकना शम है। इसका अर्थ है मन को बाह्यविषयों से रोककर अन्तर्मुखी करना। शमस्तावत् श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः। वेदान्तसार

3.4.3.2 दम

दम शब्द का अर्थ है इन्द्रियनिग्रह। इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे अपने अपने विषयों में प्रवृत्त होते हैं। ब्रह्म साक्षात्कार के साधनभूत जो श्रवण मनन निदिध्यासन आदि साधन हैं उससे भिन्न चक्षु आदि बहिरिन्द्रियों इन्द्रियों को उनके रूपादि बाह्यविषयों से हटाना दम या इन्द्रिय निग्रह कहलाता है। दमः बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम् वेदान्तसार।

3.4.3.3 उपरति

उपरति शब्द का अर्थ है उपराम या उपेक्षा का भाव। श्रवण मनन निदिध्यासनादि साधनों से भिन्न रूपरसादि विषयों से हटाई हुई चक्षुरादि बहिरिन्द्रियां पुनः अपने अपने विषयों में न जाने पावे इसके लिये प्रयत्न पूर्वक विषयों में जाने से इन्द्रियों को रोकना उपरति है। अथवा नित्य नैमित्तकादि जो विहित कर्म हैं सन्ध्यावन्दन, अग्निहोत्रादि जो गृहस्थाश्रमियो के लिये शास्त्रों अनुष्ठेय कहे गये हैं उन कर्मों का संन्यास आश्रम स्वीकार करने पर शास्त्रोक्त विधि से विधिपूर्वक परित्याग कर देना उपरति कहलाता है। निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरमणमुपरतिरथवा विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः। वेदान्तसार।

3.4.3.4 तितिक्षा

सर्दी गर्मी, मान अपमान, सुखदुःखादि का अनुभव सब को होता है। किन्तु यह समझकर कि यह तो शरीर के धर्म है आत्मा में सर्दी गर्मी कुछ नहीं है, इस प्रकार के ज्ञान के द्वारा सब को सहन करना तितिक्षा कहलाता है। तितिक्षा शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता। वेदान्तसार।

3.4.3.5 समाधान

वश में किये हुए मन को श्रवण मनन आदि में लगाने तथा उनके अनुकूल निरभिमानित्वादि, के निरन्तर चिन्तन एवं गुरु शुश्रुषादि को समाधान कहते हैं। निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम्। वेदान्तसार।

3.4.3.6 श्रद्धा

गुरु द्वारा कहे हुए वेदान्त वाक्यों तथा शास्त्र वचनों में विश्वास रखना श्रद्धा है। गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा। वेदान्तसार।

3.4.4 मुमुक्षुत्व

अज्ञान तथा अज्ञानजन्य सांसारिक पदार्थों की प्रतीति को ज्ञान के द्वारा नष्ट करके ब्रह्मस्वरूप में स्थित होने की दशा को मोक्ष कहते हैं। ऐसे मोक्ष की भावना से युक्त होना मुमुक्षुत्व है। इस प्रकार जिस जीव को लौकिक एवं वैदिक व्यवहारों में किसी प्रकार का भ्रम नहीं है, वही आत्मज्ञान का अधिकारी है। जैसा कि कहा गया है जिस का चित्त शान्त हो, जिसने इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया हो, जिस का अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो, जो चतुष्टय साधन सम्पन्न हो, ऐसे व्यक्ति को आत्मज्ञान का उपदेश देना चाहिये। मुमुक्षुत्वम् मोक्षेच्छा। वेदान्तसार।

इस प्रकार वह वस्तु जिसके उपरांत ब्रह्मजिज्ञासा का उपदेश होता है वह है नित्यानित्य वस्तु विवेक, शमदमादि साधनसपत, लौकिक पारलौकिक फलों के भोग में अनासक्ति तथा मोक्ष की अभिलाषा। इन गुणों के होने पर धर्मजिज्ञासा के पहले भी और बाद में भी ब्रह्मजिज्ञासा और ब्रह्मज्ञान हो सकता है, उनके अभाव में नहीं। इसीलिये आचार्य शंकर नें अथ शब्द का अर्थ है किया है साधनचतुष्टय के अनन्तर ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिये या साधनसंपत् के अनन्तर ही ब्रह्मजिज्ञासा होनी चाहिये । अथ शब्द से यहां आनन्तर्य के अर्थ में अभीष्ट है।

3.5 अतः शब्द के अर्थ

सर्वविदित है कि अतः शब्द हेत्वर्थक अर्थात् कारण का द्योतक है अतः प्रश्न उठना है कि यहां अतः पद से किस हेतु का ग्रहण किया गया है इस सन्दर्भ में श्रुति स्पष्ट रूप से कहती है जैसे लोक में कर्मफल का क्षय होता है वैसे ही परलोक में भी पुण्य के फल का क्षय होता है तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते । छान्दोग्योपनिषद् 8–1–6 अर्थात् अग्निहोत्रादि जो अभ्युदय के साधन हैं उनका फल अनित्य है यह श्रुति प्रतिपादित करती है तथा श्रुति ही ब्रह्मज्ञान के फल को नित्य बताती है। श्रुति स्पष्ट कहती है कि मनुष्य का परम पुरुषार्थ ब्रह्मज्ञान है ब्रह्मविदाप्नोति परम्। अतः होतोः ब्रह्म जिज्ञासा करना चाहिये यह् फलितार्थ है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त साधनसंपत् सिद्ध होने के अनन्तर ही ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये । इसलिये अतः शब्द से श्रुति द्वारा प्रतिपादित कर्मफल की अनित्यता और ब्रह्म ज्ञान

की नित्यता के कारण ब्रह्म विचार करना चाहिये।

3.6 ब्रह्मजिज्ञासा का स्वरूप

ब्रह्म जिज्ञासा शब्द का अर्थ उस ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा है जिसको जन्माद्यस्य यतः सूत्र से परिभाषित किया गया है। यहां प्रयुक्त ब्रह्म पद से ब्राह्मण वर्ण नही जानना चाहिये। ब्रह्मजिज्ञासा में षष्ठीतत्पुरुष समास है और षष्ठी विभक्ति कर्म अर्थ में है शेष अर्थ में नहीं। अर्थात् चतुर्थी तत्पुरुष आदि नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जिज्ञासा ब्रह्म के लिये है बल्कि ब्रह्मविषयक है। क्योंकि चतुर्थी तत्पुरुष वहीं होता है जहां एक पद दूसरे पद का कोई विकार सूचित करे। जैसे भोजन सामग्री शब्द। ब्रह्म शब्द का प्रयोग शास्त्र में कई अर्थों में हुआ है जैसे वेद, तर, ब्रह्म, ब्राह्मण, प्रजापति आदि। शङ्कराचार्य ने ब्रह्म जिज्ञासा में शेष अर्थ में षष्ठी इसलिये नहीं स्वीकार किया है क्योंकि शेष अर्थ में षष्ठी स्वीकार करने पर उसका अर्थ ब्रह्म संबंधिनी जिज्ञासा हो जायेगा। तब उसके अन्तर्गत स्वरूप, प्रमाण, युक्ति, साधन, फल आदि का भी अन्तर्भाव हो जायगा। परन्तु जिज्ञासा ज्ञान के लिये होती है अतः उसका विषय ब्रह्म भी मानना होगा। विषय के बिना ज्ञान नहीं हो सकता इसीलिये ब्रह्मणः जिज्ञासा में कर्म में पष्ठी स्वीकार की गई है। यद्यपि शेष अर्थ में षष्ठी स्वीकार करने पर भी ब्रह्म जिज्ञासा का विषय हो सकता है ऐसा कहा जा सकता है किन्तु तब ब्रह्म की जिज्ञासा को प्रत्यक्ष विषय न मानकर परोक्ष विषय मानना पडेगा। पुनः शेष अर्थ में षष्ठी स्वीकारने पर भी उसके अन्तर्गत ब्रह्माश्रित सभी विचार आ जाते हैं इसलिये शेष अर्थ में षष्ठी मानने में कोई आपत्ति नही है परन्तु ऐसा तो कर्म अर्थ में षष्ठी मानकर ब्रह्म को प्रधान मानने पर भी हो सकता है। प्रधान के साथ गौण का बोध अपने आप ही हो जाता है। जैसे राजा जाता है कहने से राज परिवार तथा पूरे सैन्य आदि के गमन का बोध हो जाता है। अतः कर्म में ही षष्ठी मानना भाष्यकार को अभिमत है।

3.7 जिज्ञासा पद का अर्थ

जानने की इच्छा का नाम जिज्ञासा है। जिज्ञासा का अर्थ केवल उत्सुकता मात्र नहीं है बल्कि वह ज्ञान है जिसका पर्यवसान अपरोक्षानुभूति में होता है। यद्यपि सामान्य ज्ञान प्रमाण से जो ज्ञाता है तथापि यहां पर अखिल संसार के कारण रूप अविद्या के नाश करने वाले ज्ञान से उसका तात्पर्य है। अतः आचार्य शंकर ने भाष्य में पुरुषार्थ शब्द का प्रयोग किया है जिसके विषय में यह भ्रम हो सकता है कि ब्रह्म नित्य है उत्पाद्य या विकार नहीं है अतः ब्रह्म पुरुषार्थ का विषय कैसे हो सकता है। इसका समाधान देते हैं कि यद्यपि ब्रह्म नित्य है तथापि ब्रह्म विषयक अज्ञान होने के कारण उस अज्ञान नाशक ज्ञान की प्राप्ति पुरुषार्थ ही पुरुष का प्रयोजन रूप पुरुषार्थ है। अर्थात् अविद्या का नाश ब्रह्म से नहीं होता है अपितु ब्रह्मविषयक ज्ञान से होता है। ब्रह्म तो स्वयं प्रकाशरूप है।

पुनः यह जिज्ञासा ठीक नही है कि ब्रह्म सर्वथा अज्ञात है या सर्वथा ज्ञात है क्योकि ब्रह्म सर्वथा अज्ञात भी नही है और सर्वथा ज्ञात भी नहीं है क्योकि ब्रह्म को सर्वथा अज्ञात मानने पर ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा नहीं हो सकती। पुनः ब्रह्म को सर्वथा ज्ञात मालेने पर ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा व्यर्थ होने लगेगी। इसका समाधान देते हैं भाष्यकार कि कि ब्रह्म न तो सर्वथा अज्ञात है और न सर्वथा ज्ञात है। ब्रह्म है इस प्रकार के ज्ञान होने पर भी ब्रह्म के स्वरूप के विषय में ज्ञान नहीं है और उसी से दुःख का अनुभव होता है। ब्रह्म है इस प्रकार के ज्ञान के सन्दर्भ में आचार्य कहते हैं

कि ब्रह्म को सबकी आत्मा कहा गया है और सबको यह अनुभव होता है कि मैं हूं। कोई यह नहीं कहता कि मैं नहीं हूं। इससे सिद्ध होता है कि अस्तित्व वाचक अन्य सभी वाक्यों का निषेध हो सकता है। एक मात्र अस्तित्व वाचक वाक्य जिसका निषेध करना आत्मविरोधी है वह वाक्य है मैं हूं। तात्पर्य यह है कि विषय मात्र के अस्तित्व का निषेध आत्म विरोध के बिना भी हो सकता है किन्तु विषयी आत्मा के अस्तित्व का विरोध नही हो सकता।

3.8 आत्म विषयक विप्रतिपत्ति का निरास

आत्मविषयक विभिन्न मतों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। आत्मरूप से ब्रह्म सदा सबको ज्ञात है, अतः ज्ञात होने से ब्रह्म जिज्ञास्य न होने के कारण ग्रन्थ से प्रतिपाद्य भी नहीं होगा, इससे उसका ज्ञान भी नहीं होगा, तथा ज्ञान न होने से ज्ञान निवर्त्य अज्ञान की निवृत्ति रूप प्रयोजन भी सिद्ध नही होगा। इसलिये मैं हू आत्मा के इस सत् चैतन्य रूप सामान्य धर्म से यद्यपि ब्रह्म ज्ञात है, तो भी सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादि विशेष धर्मो से ब्रह्म ज्ञात नहीं है। यदि ब्रह्म विशेषरूप से ज्ञात होता तो वादियों का आत्म विषयक परस्पर मतभेद ही नहीं होता। वादियों के विप्रतिपत्ति से यह सिद्ध होता है कि आत्मा के सामान्यरूप से ज्ञात होने पर भी विशेष रूप से अज्ञात है। ब्रह्म में सामान्य और विशेष दोनों रूप कल्पित हैं, तथापि यह जिज्ञासुओं को समझाने के लिए कहा गया है। ब्रह्म विशेष रूप से अज्ञात होने पर देहमानम् इत्यादि भाष्य से स्थूल और सूक्ष्म क्रम से वादियों के मत को प्रदर्शित किया गया है।

शास्त्र विचार रहित प्राकृत जन के मत में पृथिवी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों की देहाकार में परिणिति ही चैतन्य है। चत्वारि भूतानि भूमिवार्य्यनलानिलाः। चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चौतन्यमुपजायते। उक्ति भी है। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः तैच्चिरीयारण्यक अतः लोकायत के अनुसार देह के आत्मत्व में लोक प्रतीति और श्रुति प्रमाण है।

इन्द्रियाण्येव इत्यादि भाष्य से इन्द्रिय आत्मवादी मत का उल्लेख करते हुये जाग्रत् अवस्था में रूप आदि का ज्ञान नेत्र आदि इन्द्रियों से होता है, अन्धादि को रूपादि का ज्ञान नहीं होता, इस अन्वय व्यतिरेक से यह सिद्ध होता है कि ज्ञान का आश्रय इन्द्रियाँ हैं देह नहीं, देह तो केवल नेत्र आदि इन्द्रियों का आधारभूत जड़ पदार्थ है न कि चैतन्य। सुषुप्ति में लोकसिद्ध है कि स्थूल शरीर के विद्यमान तथा इन्द्रियों के अविद्यमान होने से ज्ञान नहीं होता, इस अन्वय व्यतिरेक से भी ज्ञान का आश्रय इन्द्रियां ही हैं। पश्यामि, शृणोमि, जिघ्रामि इत्यादि प्रत्यक्ष लौकिक प्रतीति से तथा इन्द्रिय संवाद में ते ह वाचमुचुः ।बृहदारण्यक श्रुति से सिद्ध है कि इन्द्रियां ही आत्मा हैं।

मन इत्यन्ये इस भाष्य से मनात्मवादी के मत को उपस्थित किया है इन्द्रियों के आत्मा मानने पर स्वप्न में नेत्र आदि इन्द्रियों के न होने से किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होना चाहिए, किन्तु जानामि इत्यादि ज्ञान तो वहाँ भी सर्वानुभव सिद्ध है, वह ज्ञान मन से होता है। जाग्रत् में भी ज्ञान मन से होता है, इन्द्रियाँ साधन मात्र हैं। यदि इन्द्रियों को आत्मा मानें तो सब इन्द्रियों के आत्मा होने से कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि उन सबका ऐकमत्य होना सम्भव नहीं है। यदि उनका कोई एक नियामक मानें तो वही आत्मा होगा तब उनमें आत्मत्व प्रतिज्ञा बाधित हो जायगी। इसलिए अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः तैत्तिरीयोपनिषद् इत्यदि श्रुति प्रमाण से मन ही आत्मा सिद्ध होता है।

विज्ञानमात्रं क्षणिकम् इस भाष्य से क्षणिक विज्ञानवादी योगाचार मत का उल्लेख है। विज्ञानवादी बौद्ध के मत में बुद्धि मन को जानती है, अतः बुद्धि ही आत्मा है मन नहीं। बुद्धि से भिन्न बाह्य कोई भी पदार्थ नहीं है, मन भी बुद्धि का ही आकार विशेष है। बुद्धि अपने उत्पत्ति क्षण से द्वितीय क्षण में नष्ट हो जाती है, अतः क्षणिक कही जाती है। इस विषय में अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः। तैत्तिरीयोपनिषद् इत्यादि श्रुति प्रमाण भी है।

ग्रन्थमित्यपरे इस भाष्य से शून्यवादी माध्यमिक मत का उल्लेख है क्षणिक विज्ञान आत्मा अकस्मात् अहं प्रत्यय उदय होता है और वह असद को विषय करता है। इस प्रत्यक्ष प्रतीति से तथा असदेवेमदग्र आसीत् असतः सज्जायत। छांदोग्योपनिषद् इत्यादि श्रुति से शून्य ही आत्मा है यह सिद्ध होता है।

पुनः अस्ति इत्यादि भाष्य से नैयायिक आदि का मत दिखाया गया है। जब अस्त्यात्मा, अहमस्मि, अहं जानामि, इत्यादि प्रत्यक्ष प्रतीति से तथा मन्ता भोक्ता कर्ता। प्रश्नोपनिषद् इत्यादि श्रुति कर्ता, भोक्ता आत्मा उपलब्ध होता है तो शून्य आत्मा है यह शून्यवादी का कथन केवल उपहास मात्र है। पुनः सांख्य मत का उल्लेख करते हुये आचार्य कहते हैं सांख्य मत में मैं कर्ता हूं इस प्रतीति से आत्मा में कर्तृत्व मानना युक्त नहीं है। अतः आत्मा केवल भोक्ता है। इस प्रकार देह, इन्द्रिय, मन, क्षणिकविज्ञान, शून्य, कर्ता भोक्ता, केवल भोक्ता आदि त्वम् पद वाच्य आत्मा में वादियों का संक्षेप से मतभेद दिखलाया गया है।

तदनन्तर तत् पद वाच्य ईश्वर में मी अस्ति तद्व्यतिरिक्तः इत्यादि भाष्य से मतभेद दिखाते हैं। वेद प्रामाण्य को मानने वाले मीमांसक आदि कई लोग तत् पदवाच्य ईश्वर को नहीं मानते, अतः उनके मत में ईश्वर विषयक विचार का अवकाश ही नहीं है। परन्तु ईश्वरवादी मत को लेकर यह विप्रतिपत्ति दिखाई जाती है। अतः जो देह आदि से भिन्न कर्ता, भोक्ता आदि रूप जीव सिद्ध हुआ है, वह ईश्वर से भिन्न है अथवा अभिन्न इस सन्दर्भ में योग मतावलम्बी यः सर्वज्ञः सर्ववित् इत्यादि श्रुति और क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः योगसूत्र अविद्या आदि क्लेश, शुभाशुभ आदि कर्म, जन्म, आयु और भोगरूप फल और उनसे उत्पन्न वासनाओं से असम्बन्धित पुरुष विशेष ईश्वर है। इस सूत्र के आधार पर सर्वज्ञ, सर्ववित, सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वर तत् पद वाच्य है और वह जीव से भिन्न है।

वेदान्तमत में लक्षणावृत्ति से अविद्या उपाधि विशिष्ट त्वम् पदवाच्य कर्ता, भोक्ता जीवात्मा को तथा तत् पदवाच्य ईश्वर स्वरूप स्वीकार करते हैं। नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा इत्यादि श्रुतिवाक्य जीवऔर ईश्वर को अभान्न वताते हैं। तथा जीवो ब्रह्मैव आत्मत्वात् ब्रह्मवत् इत्यादि युक्ति भी है। अन्यो का मत वाले युक्त्याभास और प्रमाणाभास के कारण विवाद मात्र है।

3.9 सारांश

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा ब्रह्मसूत्र का प्रथम ग्रन्थ है इसके भाष्य से पूर्व आचार्य शंकर ने अध्यास भाष्य लिखा है। वस्तुतः संसार बन्ध अध्यास मूलक होता है। तथा अध्यास की निवृत्ति ब्रह्मात्मैक्मय विज्ञान से होती है। अतः ब्रह्मात्मैक विज्ञान के लिये प्रकृत सूत्र में ब्रह्म के ज्ञान के लिये जिज्ञासा की गई है। इस पाठ्यांश में अथातो ब्रह्म जिज्ञासा सूत्र में पठित अथ पद आनन्तर्यार्थक है यह सयुक्तिक सिद्ध किया गया है। अथ पद के अनेक अर्थों का विचार भी इस पाठ में किया गया है। साथ ही साधन चतुष्टय के

स्वरूप के विषय में भी सप्रमाण विचार उपस्थित किया गया है। पुनः लौकिक वैदिक फलों के अनित्य होने से और ब्रह्मज्ञान के नित्य होने से अतः पद की श्रुति प्रमाण पूर्वक हेतुवाचकता सिद्ध की गई है। ब्रह्मजिज्ञासा पद के व्याख्यान में ब्रह्मणः पद में षष्ठी विभक्ति की शेषवाचकता का निषेध कर कर्म वाचकता सिद्ध किया गया है एवं जिज्ञासा पद का व्याख्यान करते हुये यह बताया गया है कि ब्रह्म की जिज्ञासा क्यों करनी चाहिये। इस विषय में ब्रह्म ज्ञात है अथवा अज्ञात इत्यादि विषयों पर भी सयुक्तिक विचार किया गया है। साथ ही जिज्ञासा के प्रयोजन को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अन्त में ब्रह्म विषयक विप्रतिपत्तियों के निराश के प्रसङ्ग में चार्वाक् बौद्ध न्याय सांख्यादि सिद्धान्तों के अनुसार आत्मा के स्वरूप का उपस्थापन करते हुये तद्विषयक वैमत्य का वेदान्त की दृष्टि से निराकरण किया गया है। तथा अद्वैतसम्मत आत्मा के स्वरूप की प्रतिष्ठी की गई है। इस प्रकार प्रकृत प्रकरण में आचार्यशंकर के भाष्य के अनुसार अथातो ब्रह्म जिज्ञासा सूत्र का विवेचन किया गया है अध्येता इससे अवश्य लाभान्वित होगें।

3.10 बोधप्रश्न

एकवाक्यात्मक बोधप्रश्न

1. ब्रह्मसूत्र में कितने अध्याय हैं?
2. ब्रह्मसूत्र मे पादों की संख्या कितनी हैं?
3. अद्वैतपद की व्युत्पत्ति क्या है?
4. ब्रह्मसूत्र के अध्यास भाष्य में किसका प्रतिपादन है?
5. अद्वैत मत में मिथ्यात्व का अर्थ क्या है?
6. संशयादि की निवृत्ति किससे होती है?
7. वेदान्तशासत्र का प्रयोजन क्या है?
8. अमर कोश कार ने अथ शब्द के कितने अर्थ बताये हैं?
9. अथातो ब्रह्म जिज्ञासा सूत्रोक्त अथ शब्द का क्या अर्थ है?
10. तीन ऋण का बन्धन किसको होता है?
11. वैराग्य से क्या तात्पर्य है?
12. शम का क्या अर्थ है?
13. दम का क्या अर्थ है?
14. उपरति का क्या अर्थ है?
15. श्रद्धा का क्या अर्थ है?
16. तितिक्षा किसे कहते हैं?
17. समाधान किसे कहते हैं?
18. मुमुक्षु किसे कहते है?
19. अतः शब्द का क्या अर्थ है?
20. ब्रह्मणः पद में षष्ठी किस अर्थ में है?

बहुविकल्पात्मक बोधप्रश्न

1. गृहस्थमनुष्य को तीन ऋण होते हैं
   क. देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण
   ख. देवऋण पितृऋण व्यक्तिगतऋण
   ग. पितृऋण, ऋषिऋण मातृऋण
   घ. पितृऋण, मातृऋण, भ्रातृऋण
2. श्रुति का अर्थ पाठक्रम आदि के आधार पर क्रम निश्चित करते हैं
   क. मीमांसक
   ख. नैयायिक
   ग. वेदान्त
   घ. बौद्ध
3. धर्मविचार का फल है
   क. ऐहिक और आमुष्मिक उन्नति
   ख. मोक्ष की प्राप्ति
   ग. संसार की प्राप्ति
   घ. सामाजिक उन्नति
4. कर्म सापेक्ष होता है
   क. धर्म विचार
   ख. ब्रह्मविचार
   ग. शब्दविचार
   घ. योगानुष्ठान
5. ब्रह्मज्ञान का फल है
   क. निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति
   ख. यज्ञानुष्ठानादि
   ग. सोगसाधना
   घ. साधनचतुष्टय
6. जिज्ञासा का अर्थ है।
   क. ज्ञातुमिच्छा
   ख. प्राप्तुमिच्छा
   ग. गन्तुमिच्छा
   घ. कर्तुमिच्छा
7. चार भूतों की देहाकार में परिणिति ही चैतन्य है।
   क. प्राकृत जन
   ख. बौद्धमत
   ग. न्यायमत

घ. वेदान्तमत

8. अन्वय व्यतिरेक से ज्ञान का आश्रय इन्द्रियों को स्वीकारता है

क. इन्द्रियात्मवादी

ख. मनसात्मवादी

ग. देहात्मवादी

घ. विज्ञानात्मवादी

9. क्षणिक विज्ञानवादी योगाचार के मत में

क. विज्ञानमात्रं क्षणिकम्

ख. आत्मा भोक्ता है

ग. आत्मा कर्ता है

घ. शरीरमेवात्मा

10. आत्मा केवल भोक्ता है।

क. सांख्य मत में

ख. बौद्धमत में

ग. न्यायमत में

घ. वेदान्तमत में

11. नित्यविज्ञान को आत्मा मानता है

क. अद्वैतवेदान्त

ख. न्यायवैशेषिक

ग. माध्यमिक

घ. शून्यवादी

12. अद्वैत ब्रह्म की प्रतिष्ठा की है

क. शंकराचार्य

ख. माध्यमिक

ग. योगाचार

घ. महर्षिकपिल

सत्यासत्य विचारात्मक प्रश्न

1. श्रुति प्रतिपादित ब्रह्म असंग है।
2. अथ शब्द के श्रवणमात्र से मङ्गल का हो जाता है।
3. धर्म जिज्ञासा के अनन्तर ब्रह्मजिज्ञासा होती है।
4. ऋण का बंधन गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने पर होता है।
5. धर्मजिज्ञासा और ब्रह्मजिज्ञासा के फल में भेद है।
6. मोक्ष फल किसी कर्म पर निर्भर नहीं करता।
7. ब्रह्म ज्ञान में कोई क्रम अपेक्षित है।
8. अविद्या का नाश ब्रह्मविषयक ज्ञान से होता है।

9. ब्रह्म सर्वथा अज्ञात भी नही है और सर्वथा ज्ञात भी नहीं है।
10. मनात्मवादी इन्द्रियों को आत्मा मानता है।
11. योग दर्शन में पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं।
12. वेदान्तमत में लक्षणावृत्ति से उपाधि विशिष्ट त्वम् पदवाच्य जीवात्मा है।
13. वेदान्तमत में लक्षणावृत्ति से उपाधि विशिष्ट तत् पदवाच्य ईश्वर स्वरूप स्वीकार करते हैं।

3.11 बोध प्रश्न के उत्तर

एकवाक्यात्मक बोधप्रश्न के उत्तर

1. ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय, फलाध्याय।
2. ब्रह्मसूत्र मे पादों की संख्या सोलह हैं।
3. अद्वैत पद का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है द्विधा ईतं द्वीतम्, द्वैतस्य भावो द्वैतम्, द्वैतम् भेदः भेदो नास्ति यत्र तदद्वैतम्।
4. ब्रह्मसूत्र के अध्यास भाष्य में जगत की मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया है।
5. अद्वैतवेदान्त में मिथ्यात्व का अर्थ सत् असत् एवं सदसत् से भिन्न अनिर्वचनीय है।
6. संशय अध्यासादि की निवृत्ति विवेकज्ञान से होती है।
7. ब्रह्मात्मैकत्व के साधनों का प्रतिपादन करना ही शास्त्र का प्रयोजन है।
8. मङ्गलानन्तर्यारम्भ प्रश्नकार्त्स्यनेष्वथो अथ।
9. अथातो ब्रह्म जिज्ञासा सूत्र में पठित अथ शब्द आनन्तर्य का वाचक है
10. ऋण का बंधन उसी को होता है जो गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर जाता है।
11. तैकिक भोग्य तथा तज्जन्य सुख एवं सुख के साधन कर्मजन्य होने से अनित्य हैं। उनमें घृणा का भाव वैराग्य है
12. तत्वज्ञान के साधन श्रवण मननादि से भिन्न विषयों से अन्तःकरण या मन को संयम के द्वारा रोकना शम है।
13. ब्रह्म साक्षात्कार के साधनभूत श्रवण मनन निदिध्यासन से भिन्न बाह्यविषयों से इन्द्रियों को हटाना दम है।
14. विषयों से हटाई हुई बहिरिन्द्रियों को पुनः प्रयत्न पूर्वक विषयों में जाने से इन्द्रियों को रोकना उपरति है।
15. गुरु द्वारा कहे हुए वेदान्त वाक्यों तथा शास्त्र वचनों में विश्वास रखना श्रद्धा है
16. सुख दुख आदि द्वन्द्वोम को सहन करना तितिक्षा है।
17. वश में किये हुए मन को श्रवण मनन आदि में लगाने तथा तदनुकूल चिन्तन करना समाधान ही हैं।
18. मोक्ष की भावना से युक्त जिज्ञासु अधिकारि को मुमुक्षु कहते हैं।
19. अतः शब्द हेत्वर्थक या कारण का द्योतक है।
20. ब्रह्मजिज्ञासा में पष्ठीतत्पुरुष समास है और षष्ठी विभक्ति कर्म के अर्थ में है।

बहुविकल्पात्मक बोधप्रश्न के उत्तर

1. देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण
2. मीमांसक
3. ऐहिक और आमुष्मिक उन्नति

4. धर्म विचार
5. निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति
6. ज्ञातुमिच्छ
7. प्राकृत जन
8. इन्द्रियात्मवादी
9. विज्ञानमात्रं क्षणिकम्
10. सांख्य मत में
11. अद्वैतवदान्त
12. शंकराचार्य

सत्यासत्यविचारात्मक प्रशों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. अ सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. सत्य
11. सत्य
12. सत्य
13. सत्य

3.12 उपयोगी पुस्तके

- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, पूर्णानन्दी व्याख्या सहित, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा संस्कृत सिरीज आफिस विद्याविलास प्रेस गोपाल मन्दिर बनारस
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका सहित, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, चतुःसूत्री स्व. डॉ रमाकान्त त्रिपाठी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, महात्मागांधी मार्ग, लखनऊ
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, रत्नप्रभा भाषानुवाद सहित, अच्युत् ग्रन्थमाला, काशी
- चतुःसूत्री ब्रह्मसूत्र, कैलाश आश्रम, ब्रह्म विद्यापीठ, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई 4 जन्माद्यधिकरण (ब्रह्मसूत्र 1.1.2)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

- जन्माद्यतः सूत्र की व्याख्या तथा सूत्रस्थ षष्ठी विभक्ती के अर्थ को पाठक समझ सकेंगे।
- ब्रह्म की जगत्कारणता को अद्वैत दृष्टि से समझना।
- ब्रह्म के तटस्थ लक्षण एवं स्वरूप लक्षण को जानना।
- दर्शनिकों की आत्मविषयक विप्रतिपत्ती का अद्वैत दृष्टि से निराकरण को तथा समाधान को समझना।
- धर्मविचार की अपेक्षा ब्रह्म विचार का वैशिष्य को सप्रमाण जानना।

4.1 प्रस्तावना

भारतीयदर्शनों में वेदान्त दर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेद के अन्तिमभाग उपनिषद् दर्शन को वेदान्त दर्शन कहते है। वेदस्यान्तः शिरोभागः वेदान्तदर्शनम्। वेदान्तदर्शन के शाखाभेद से सम्प्रदाय भेद से अनेक विभाग हैं परन्तु आचार्यशंकरवेदान्त प्रवर्तित अद्वैतवेदान्त दर्शन की लोक में अत्यधिक प्रतिष्ठा है। अद्वैत वेदान्तदर्शन के तीन प्रमुख प्रस्थानों में विकसित हुई है जिसका मुख्य कारण आचार्यशंकर नें तीनों प्रस्थानों श्रुति प्रस्थान उपनिषद्, स्मृति प्रस्थान श्रीमद्भगवद्गीता तथा सूत्रप्रस्थान ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखे हैं। सूत्रप्रस्थान के आधार ग्रन्थ बादरायण विरचित ब्रह्मसूत्र है जो वेदान्तसूत्र के रूप में प्रसिद्ध है। जिसे शारीरिक सूत्र तथा आचार्य शंकर कृत भाष्य को शारीरक भाष्य भी कहते हैं। ब्रह्मसूत्र चार अध्यायों में विभक्त है। समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय,

साधनाध्याय तथा फलाध्याय। अध्याय पादों में विभक्त हैं। तथा प्रत्येक अध्यया के चार चार पाद हैं। पाद अधिकरणों में विभक्त हैं। तथा अधिकरण सूत्रों में। इस प्रकार सूत्रों की संख्या 555है। प्रथमाध्याय समन्वयाध्याय के प्रथम चार अधिकरण या चार सूत्र चतुःसूत्री कहे जाते हैं। जिज्ञासाधिकरण, जन्माद्यधिकरण, शास्त्रयोनित्वाधिकरण, समन्वयाधिकरण। जिज्ञासाधिकरण में ब्रह्मजिज्ञासा की प्रतिज्ञा की गई है। तथा आत्मविषयक विविध विप्रतिपत्तियों का निराकरण पूर्वक अद्वैतमूलक ब्रह्म की प्रतिष्ठा की गई है। तथा प्रकृत द्वितीय जन्माद्यधिकरण जन्माद्यस्य यतः सूत्र के द्वारा अद्वैतब्रह्म के लक्षण तथा जगतजन्मादिकारणता का विचार किया गया है।

प्रकृतपाठ्यांश में जन्माद्यतः सूत्र की व्याख्या के साथ ब्रह्म की जगत्कारणता तथा ब्रह्म के तटस्थ एवं स्वरूप लक्षण पर विचार किया जायेगा। आत्मविषयक दर्शनिकों की विप्रतिपत्ती का अद्वैत मूलक निराकरण भी इस पाठ्यांश में किया जायेगा तथा धर्मविचार की अपेक्ष ब्रह्म विचार का वैशिष्य भाष्यानुरोध से विवेचन किया जायेगा।

4.2 जन्माद्यस्य यतः सूत्रस्य तात्पर्यम्

ब्रह्मसूत्र का दूसरा सूत्र है जन्माद्यस्य यतः है। अर्थात् जो जगत् की सृष्टिप्रलय आदि का कारण है वह ब्रह्म है। ब्रह्मसूत्र का यह द्वितीयसूत्र ब्रह्म के तटस्थ लक्षण का निर्देश करता है। प्रकृत सूत्र का विग्रह इस प्रकार है जन्मादिः अस्य यतः। जन्म आदि में हो जिसका। यहां तद्‌गुण संविज्ञान बहुब्रीहि समास है। तद्‌गुण संविज्ञान का अर्थ है उस गुण के साथ उपस्थिति। जैसे पीताम्बरपुरुषः में तद्‌गुण संविज्ञान बहुब्रीहि हैं। जहां विशेषण पदार्थों का क्रिया में अन्वय हो वहां तद्‌गुणसंविज्ञान बहुब्रीहि समास होता है। परन्तु जहां समास के घटकी भूत विशेषण पदार्थों का क्रिया में अन्वय न हो वहां अतद्‌गुण बहुब्रीहि समास होता है। जैसे लम्बकर्णमानय या पीताम्बरपुरुषं पश्य कहने से लम्बेकान वाले या पीतवस्त्र विशेषण है तथा इनका आनय सायपश्य क्रिया में अन्वय होता है। परन्तु दृष्टसमुद्रं रामं पश्य यहां अतद्‌गुण संविज्ञान बहुब्रीहि समाम है। दृष्टसमुद्रं रामं पश्य कहने से एसा राम देखा जाता है जिसने समुद्र को देखा है। परन्तु समुद्र की उपस्थिति नही होती। इसीप्रकार जन्माद्यस्य यतः सूत्र में तद्‌गुण संविज्ञान बहुब्रीहि समास है इसका अर्थ है जन्म आदि में हो जिसका अर्थात् जन्म के साथ स्थिति और प्रलय की भी उपस्थिति है। इस प्रकार सूत्रार्थ हुआ जगत् के जन्म स्थिति और नाश हो जिससे या नाश का कारण है जो वह ब्रह्म है। यद्यपि प्रकृत सूत्र में यतः यस्मात् पञ्चम्यन्त के प्रयोग से अनुमान की आशंका की जाती है अर्थात् ब्रह्म की सत्ता या जगत् कारणता अनुमान से सिद्ध है परन्तु यह पक्ष निरर्थक है क्योकि यहां अनुमान का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि यहां यह प्रतिपादित किया गया है कि यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते इत्यादि श्रुतियों से जिसे जगत् का कारण कहा गया है वह ब्रह्म है अतः ब्रह्म की सत्ता या ब्रह्म की जगत्कारणता अनुमान से नहीं सिद्ध है। यह मत भाष्यकार को अभिमत नही है। इसे भाष्यकार ने स्पष्ट किया है– जन्मनः आदित्वं श्रुतिनिर्देशापेक्षं वस्तुवृत्तापेक्षं च। श्रुतिनिर्देशस्तावत्– यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। तैत्ति. ३११। इत्यस्मिन्वाक्ये जन्मस्थितिप्रलयानां क्रमदर्शनात्। वस्तुवृत्तमपि जन्मना लब्धसत्ताकस्य धर्मिणः स्थितिप्रलयसंभवात्। अस्येति प्रत्यक्षादि संनिधापितस्य धर्मिणः इदमा निर्देशः। जन्माद्यस्य यतः में षष्ठी विभक्ति जन्मादि के साथ ब्रह्म के सम्बन्ध का द्योतक है। तथा यतः पद ब्रह्म की कारणता का निर्देश करती है। षष्ठी जन्मादिधर्मसंबन्धार्था। यत इति कारण निर्देशः। भाष्यकार आचार्य शंकर ब्रह्म की जगतकारणता को स्पष्ट करते हैं – अस्य जगतो नामरूपाभ्यां व्याकृतस्यानेककर्तृभोक्तृसंयुक्तस्य प्रतिनियतदेश कालनिमित्तक्रियाफलाश्रयस्य

मनसाप्यचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभङ्गं यतः। अर्थात् इस नामरूप जगत जो अनेक कर्ता भोक्ता से संयुक्त है जो नाम रुप से अभिव्यक्त हुआ है तथा प्रतिनियत देश, काल और निमित्त से क्रिया और फल का आश्रय है एवं मन से भी अचिन्त्य रचना रूप वाला इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ, शक्तिमान् कारणसे होते हैं वह ब्रह्म है। जैसे कुलाल घट के नामरूपादि का पहले अपने अन्तः करण में विचार करता है तदनन्तर बाहर उसे आकृति देता है। उसी प्रकार ब्रह्म भी प्रत्यक्ष कृत जगत् को नामरूप से अभिव्यक्त करता है।

प्रकृत सूत्र में जगत् चेतन कर्तृकं नामरूपात्मकत्वात् जैसे नामरूपात्मक तथा कार्य होने से घट चेतन कर्तृक है वैसे ही जगत् भी नामरूपात्मक तथा कार्यरूप होने से चेतन कर्तृक है यह अनुमान प्रयोग कर न केवल ब्रह्मलक्षण प्रतिपादक सूत्र को अनुमान परक कहा गया है अपितु सांख्य बौद्धमत के जगत्कारण विषयक सिद्धान्त का निराकरण भी किया गया है। परन्तु आचार्य शंकर ने प्रकृत सूत्र को अनुमान प्रतिपादक स्वीकार नही किया है। अतः जिज्ञासा स्वाभिक है कि वेदान्त में तर्क या अनुमान को स्वीकार करते हैं या नही। क्या तत्त्वज्ञान में तर्क या अनुमान सहायक नहीं है। इस विषय में शङ्कराचार्य का मत है कि वह अनुमान जो वेदांत वाक्यों के विरुद्ध नहीं है वह तो स्वीकार करते हैं, किन्तु स्वतंत्र अनुमान को स्वीकार नही करते है। अर्थात् अनुमान द्वारा श्रुति प्रतिपादि सिद्धांत को परिपुष्ट किया जा सकता है किन्तु अनुमान को ज्ञान का स्वतंत्र साधन अथवा श्रुति का विकल्प नहीं माना जा सकता। श्रुत्यैव च सहायत्वेन तर अभ्युपेतत्वात। स्वतंत्र दृष्टि से तर्क द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है इसके दो कारण हैं, एक तो ब्रह्म का स्वरूप, दूसरा तर्क का स्वरूप। ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष होने के कारण विचार या अनुमान का विषय नहीं हो सकता। इस अतिरिक्त ब्रह्म अदृष्ट तत्त्व है, और अनुमान अनिवार्य रूप से व्याप्ति पर आश्रित होने के कारण प्रत्यक्षादि पर निर्भर करता है। अर्थात् अनुमान स्वरूपतः सीमित है। इसलिए उसका विषय ब्रह्म नहीं हो सकता।

4.3 षड्भावविकार

जन्माद्यस्य यतः सूत्र की व्याख्या में जन्म स्थिति और लय इन तीन विकारों का साक्षात् उल्लेख किया गया है परन्तु यास्क ने छः भावविकार का विवेचन निरुक्त में किया है जैसे जायते अस्ति विपरिणमते वर्द्धतेऽपक्षीयते विनश्यति। निरुक्त1–1–3। शरीर की उत्पत्ति होती है उत्पन्न होने के बाद वह अस्तित्व में आता है। धीरे धीरे परिणमन होता है। बाल युवा वृद्ध आदि क्रम से बढता है तथा क्षीण को प्राप्त होता है अन्त में नाश होता है। अर्थ जो भी भावपदार्थ हैं उनके छः विकार अवश्य होते हैं। फिर वादरायण ने तीन ही भावविकारों का उल्लेख क्यों किया ऐसी जिज्ञासा होने पर उसका समाधान भाष्यकार ने किया ही कि वृद्धि अवयवों का बढना भी उत्पत्ति रूप है महान पटो जायते यह उत्पत्ति का स्वरूप है। परिणाम भी उत्पत्तिरूप है जो तीन प्रकार के हैं धर्म लक्षण और अवस्था परिणाम। जैसे मृत्तिकाधर्मी का घट आदि धर्म परिणाम है। घट आदि उत्पन्न होते हैं यह लक्षण परिणाम है। तथा घट में नूतनत्व प्राचीनत्वादि का होना यह अवस्था परिणाम है। वर्धते और विपरिणमते इन दो भाव विकारों का जायते इस भावविकार में अन्तर्भाव हो गया है तथा अपक्षीयते का अर्थ अवयवों का ह्रास होना है जिसका अन्तर्भाव नाश इस भावविकार में हो जाता है। अतः अन्य तीन भावविकारों का जन्म और नाश में अन्तर्भाव हो जाने से तीन भावविकारों का ही साक्षात् उद्देश्य सूत्र में किया गया है। पुनः प्रकृत सूत्र ब्रह्म के लक्षण प्रतिपादक है, अतः जगत की उत्पत्ति स्थिति और लय का कारण ब्रह्म है यह सिद्ध होता है।

4.4 जगत्कारण विषयक विप्रतिपत्ति

भारतीय दर्शनों में जगत् कारण के विषय में अनेक मत हैं कोई ईश्वर को जगत् का कारण मानता है, कोई प्रकृति को, कोई विज्ञान को कारण मानता है, कोई शून्य को, कोई ब्रह्म को इस प्रकार अनेक मत हैं। अतः जगत् का कारण ब्रह्म है आचार्य शंकर ने भाष्य में जगतकारण विषयक स्वमत की सिद्धि के लिये जगत् जन्मादि के कारण ब्रह्म का जो स्वरूप बताया है उस में चार विशेषण पदों का सन्निवेश किया है अनेक कर्तृभोक्तृ संयुक्तस्य, प्रतिनियतदेशकालनिमित्त, क्रियाफलाश्रयस्य मनसाप्यचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभङ्गं यतः यस्मात् सर्वज्ञात् भवति स ब्रह्म। भाष्यकार ने वादियों के मत के निराकरण के लिये मुख्य रूप से चार मत का उल्लेख किया है प्रथम प्रधानादचेतनात् पद से प्रधानकारणवादी सांख्यमत का, दूसरा अणुभ्यो अभावात् पद से परमाणुकारणवादी न्यायवैशेषिकमत का, तीसरा अभावात् पद से शून्यकारणवादि माध्यमिक बौद्ध के मत का तथा संसारिणो वा इस पद से हिरण्यगर्भ की कारणता का। वस्तुतः सांख्यमत के अनुसार जगत के उत्पत्ति आदि का कारण त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति या अचेतन प्रधान है। परन्तु प्रधान जड़ है, अतः उससे इस विचित्र जगत के उत्पत्ति आदि अभम्भव हैं। शून्यवादी इस जगत के उत्पत्ति आदि का कारण शून्य को स्वीकार करते हैं। परन्तु शून्य के अभावरूप होने से इस विचित्र रचनात्मक भावरूप जगत् की उत्पत्ति शून्य से नही हो सकती। यदि अभाव से भाव की उत्पत्ति स्वीकार करने पर अतिप्रसङ्ग हो जायगा। तब बालू से भी तेल की उत्पत्ति होने लग जायेगी। जबकि नासतो विद्यते भावः इस भगवद्गीता वाक्य में असत् के अस्तित्व को ही नही स्वीकारा है। श्रुति भी कहती है सदेव सोम्येदमग्र आसीत् छान्दोग्योपनिषद् ।अन्यत्र भी कथमसतः सज्जायेतेति छान्दोग्योपनिषद्। अतः श्रुति आदि प्रमाणों से शून्य से जगत की कारणता का निषेध प्राप्त है। अतः शून्य जगत् का कारण नही हो सकता। पुनः परमाणु कारणवादी नैयायिक इस विचित्र जगत की उत्पत्ति आदि का कारण परमाणु को स्वीकार करते हैं। लेकिन परमाणु जड है अतः इस विचित्र जगत की रचना जड़ परमाणु से नही हो सकती परमाणु के अचेतन होने से उसकी जगत रचना में प्रवृत्ति स्वयं नही हो सकती। अथ– परमाणु भी विचित्र जगत् की रचना नही कर सकती। हिरण्यगर्भ भी हिरण्यगर्भ भी इस विचित्र जगत के उत्पत्ति आदि करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् श्वेता ६।१२ इत्यादि श्रुति ब्रह्मा के भी अन्य जीवों के समान उत्पत्ति आदि कहती है। अर्थात् जो स्वयं जन्य है उत्पन्न है वह इस जगत् के उत्पत्ति आदि का मूल कारण नही हो सकता। उक्त मतों के अतिरिक्त भी कारणता विषयक सिद्धान दर्शन शास्त्र मे प्राप्त हैं जैसे लोकायताभिमत स्वभाव भी जगत् का कारण नही हो सकता। क्योकि वह जड है। क्योकि फल चाहने वाला पुरुष देश, काल और निमित्त की अपेक्षा करता है, जैसे धान्यार्थी विशेष देश, वर्षा आदि काल और विशेष बीज आदि की अपेक्षा करता है, वैसे ही सर्वज्ञ ईश्वर भी जीवों को तत् तत् कर्म का फल देने के लिए विशेष देश, काल और निमित्तकी अपेक्षा करता है, परन्तु ऐसा जड़ समुदाय में सम्भव नहीं है। अतः इस विलक्षण जगत के उत्पत्ति आदि का कारण परमेश्वर ही है। जगत के उत्पत्ति आदि के कारण रूप से श्रुति सिद्ध ईश्वर को नैयायिक अनुमान प्रमाण से सिद्ध करते हैं जगत् चेतन कर्तृक है कार्य होने से घट के समान। अतः वह भी चेतन कर्ता द्वारा निर्मित होना चाहिए, वह चेतन कर्ता जीव आदि से भिन्न सर्वंश, सर्वंशक्तिसम्पन्न ईश्वर है। उस ईश्वर की सिद्धि श्रुति से होती है अतः श्रुति मूलक अनुमान भाष्यकार को भी अभिमत है जिसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। जिसका तात्पर्य है यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते इत्यादि वेदान्त वाक्यार्थ की दृड़ता के लिए सहायक रूप से

अनुमान प्रमाण स्वीकृत है, जैसे मकड़ी से उत्पन्न तन्तु आदि कार्य है और उसके प्रति अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मकड़ी है, वैसे जगत् भी कार्य होने से अभिन्ननिमित्तोपादान कारण ब्रह्म है। जिससे वस्तु उत्पन्न हो उसमें ही लीन हो वह उपादान कारण है। उपादानकारण से भिन्न कारण निमित्त कारण कहा जाता हैं। यथा मृत्तिका से उत्पन्न हुआ घट मृत्तिका में लीन होता है, अतः मृत्तिका घट के प्रति उपादानकारण है और कुम्हार आदि निमित्त कारण हैं। अतः अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत रूप कार्य के प्रति उपादान और निमित्तकारण एक ब्रह्म ही है। इसमें यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। तथा अक्षराद्विविधाः सोम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चौवापि यन्ति। मुण्डकोपनिषद्। वह अक्षर सत्स्वरूप ब्रह्म है इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं। संसार के प्रति ईश्वर को केवल निमित्तकारण मानने वाले नैयायिकों का मत उक्त अनुमान तथा श्रुति से निराकृत हो जाता है। भाष्यकार जगज्जन्मादि के कारण का प्रतिपादन करने वाले वेदान्तवाक्यों के अर्थ स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त अनुमान को अविरोधि बताते हुये स्पष्ट करते हैं कि सत्सु तु वेदान्तवाक्येषु जगज्जन्मादिकारणवादिषु तदर्थग्रहणाद्दार्ढ्यायानुमानमपि वेदान्तवाक्याविरोधिप्रमाणं भवन्न निवार्यते। शांकरभाष्य। अर्थात् सः कर्ता सर्वज्ञः जगत्कारणत्वात् यन्त्रैवं तन्नैवं यथा कुलालः। जगत का कारण होने से वह कर्ता सर्वज्ञ है, जो जगत का कारण नहीं है वह सर्वज्ञ भी नहीं, यथा कुलाल। यह अनुमान यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः इत्यादि श्रुत्यर्थ की दृढ़ता संशय विपर्यय की निवृत्ति के लिए है। श्रुतार्थ में यदि संशय अथवा विपर्यय उत्पन्न हो तो वे तर्क से निवृत्त करने चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रोतव्यं श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः। मत्वा च सततं ध्येयं एते दर्शनहेतवः। इत्यादि श्रुति प्रमाण है।

4.5 ब्रह्म का लक्षण

प्रथम सूत्र में ब्रह्म विचार की प्रतिज्ञा की गई है। तथा द्वितीय सूत्र में ब्रह्मज्ञानप्राप्त करने वाले साधकों के लिये ब्रह्म का लक्षण का प्रतिपादन किया गया है। परन्तु जन्मादि सूत्र से सामान्य कारण का ज्ञान होता है। कि इस द्वैतप्रपञ्च का कोई कारण है, क्या वह प्रधान, परमाणु अथवा अन्य है? ऐसी कारण विषयक जिज्ञासा बनी रहती है, उसकी निवृत्ति के लिए विशेष कारण विषयक आनन्दाद्ध्येव यह निर्णय वाक्य उद्धृत किया गया है। इससे यह निर्णय हो जाता है कि सारे जगत का कारण आनन्द है और वह ब्रह्मस्वरूप है, जड़ प्रधान आदि नहीं। इस प्रकार श्रुतिवाक्यों से ब्रह्म के दो लक्षण प्रतीत होते हैं एक स्वरूपलक्षण और दूसरा तटस्थलक्षण।

4.5.1 ब्रह्मणः तटस्थलक्षण विचार

अद्वैत वेदान्त के अनुसार कार्य की की वास्तविक उत्पत्ति नहीं होती। केवल कार्य के उत्पत्ति का आभास होता है, क्योंकि कारण स्वरूप ब्रह्म सत् है और सत् अपरिवर्तनशील होता है। तथा असत् की उत्पत्ति नही हो सकती। अतः जो कुछ कार्यकारण भाव या उत्पत्ति नाश देखने में आता है वह रज्जु सर्प के समान अविद्याजन्य है। यही विवर्तवाद है। बिना वास्तविक परिवर्तन के बिना परिवर्तन का आभासित होना विवर्त है। ब्रह्म पूर्णरूप से अपने स्वरूप में स्थित होते हुए भी अविद्या के कारण परिवर्तनशील जगत् के रूप में दिखाई पड़ता है। अतः जगत् को ब्रह्म का विवर्त कहा गया है। जन्माद्यस्य यतः सूत्र ब्रह्म का तटस्थ लक्षणप्रतिपादक सूत्र है ऐसा कहने का अभिप्राय यही है कि ब्रह्म वह अपरिवर्तनशील तत्व है जिसका विवर्त या आभास जगत् है। तटस्थ लक्षण से तात्पर्य है कि कादाचित्कत्वे सति व्यावर्तकं तटस्थ लक्षणम्। जो लक्षण स्वलक्ष्य में कभी रहकर अपने लक्ष्य का अन्य अलक्ष्यों से पृथक्

बोध कराता है वह तटस्थ लक्षण है। जन्म, स्थिति और लय की कारणता ब्रह्म में सदा नहीं रहती, केवल माया के अधिष्ठानता काल में रहती है, अतः इनकी कारणता ब्रह्म में कदाचित् है। सांख्य और नैयायिक आदि के मत में प्रधान, परमाणु आदि जो अलक्ष्य हैं उनसे भी ब्रह्म का पृथक् रूप से ज्ञान कराता है। इसलिए कदाचित् ही व्यावर्तक होने से जन्म, स्थिति तथा लय की कारणता ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। जैसे काकवन्तो देवदत्तस्य गृहम् यह वाक्य तटस्थलक्षण का प्रतिपादक है क्योंकि काक सर्वदा एक ही भवन पर नही रहता। इस प्रकार यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, यः सर्वज्ञः सर्ववित्, इत्यादि श्रुतिवाक्य तथा जन्मादिसूत्र ब्रह्म के तटस्थ लक्षण हैं। जन्माद्यस्य यतः इस सूत्र में तथा यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते वाक्य में यतः यतो शब्द कारण का वाचक है जिसका उपसंहार वाक्य आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि श्रुति है। विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। बृहदारण्यक। ब्रह्म विज्ञान तथा आनन्दस्वरूप है इत्यादि अन्य शाखाओं में स्थित वाक्य भी इस अधिकरण के विषय हैं। इस प्रकार सब शाखाओं में तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण घटित वाक्य जिज्ञास्य ब्रह्म में समन्वित हैं।

4.5.2 ब्रह्मण स्वरूपलक्षण विचार

इस जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण ब्रह्म है यह अद्वैताभिमत सिद्धान्त है। आचार्य शंकर ने ब्रह्म के तटस्थ लक्षण के साथ स्वरूपलक्षण का भी प्रतिपादन किया है स्वरूपलक्षण का परिभाषा ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत्यं ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म। स्वरूपं सत् व्यावर्तक स्वरूपलक्षणम् अर्थात् जो लक्षण स्वलक्ष्य का स्वरूप होता हुआ स्वलक्ष्य को अन्य अलक्ष्यों से पृथक् सूचित करे वह स्वरूप लक्षण है। जैसे सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। सत्य, ज्ञान और अनन्त ये ब्रह्म के स्वरूप भूत होते हुए लक्ष्य ब्रह्म का अलक्ष्य असत्, जड़ और दुःखरूप प्रपन्च से पृथक् ज्ञान कराते हैं, अतः सत्य आदि ब्रह्म के स्वरूप लक्षण हैं। यहां ब्रह्म का स्वरूप लक्षण विषयक परिभाषा विचारणीय है जैसे

1. यदि ब्रह्म शब्दों से परे है, तो शब्द द्वारा उसकी परिभाषा नही हो सकती।
2. पुनः सत्यं ज्ञानं अनन्तं ये तीनों पद क्या ब्रह्म के विशेषण हैं, अर्थात् क्या ब्रह्म के साथ विशेष्यविशेषण भाव से रहते हैं।
3. सत, चित, और आनन्द या सत्यं, ज्ञानम्, अनन्तम् इन पदों का परस्पर सम्बन्ध क्या है।
4. पुनः ब्रह्म के स्वरूप लक्षण में तीन पद का समावेश ही है न न्यून न अधिक । इत्यादि विचार उपस्थित होते हैं।

वस्तुतः ब्रह्म वाणी से परे है, इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्रह्म के विषय में कुछ कहा ही नहीं जा सकता है। यदि ऐसा होता तो ब्रह्मविषयक उपदेश सम्भव न होता। शब्दों से परे होने का अर्थ यह है कि इदंतया अथवा विषय के रूप में ब्रह्म का वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्रह्म के विषय में दो ही तरह के शब्द प्रधानतया श्रुति में मिलते हैं, एक तो निषेधार्थक, नेह नानास्ति किचन या नेति नेति। दूसरा अखण्डार्थबोधक –जैसे तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, इत्यादि। ये दोनों प्रकार के वाक्य किसी विषयवस्तु का वर्णन नहीं करते बल्कि किसी अपरोक्षानुभव का ही संकेत करते है। शब्द का प्रधान उद्देश्य विषय वर्णन है, और ब्रह्म विषय नहीं है, ब्रह्म विषयी है, अतः वह शब्द का विषय नही है। अतः इसमे विरोध नहीं है कि ब्रह्म शब्द का विषय नही है तथा शब्दों द्वारा उसका लक्षण भी किया जाता है।

पुनः सत् चित् आनन्द आदि शब्द ब्रह्म के विशेषण नहीं हैं। क्योकि प्रथमतः ये शब्द

भावार्थक नहीं बल्कि अभावार्थक हैं, अर्थात् सत् से असत् की व्यावृत्ति, चित् से जडत्व की व्यावृत्ति और आनन्द से दुःख की व्यावृत्ति होती है। द्वितीय ब्रह्म में सब प्रकार के भेदों का अभाव है। अतः विशेष्यविशेषणभाव कल्पना भी व्यर्थ है।

पुनः सत्, चित् और आनन्द का परस्पर सम्बन्ध के विषय में वेदान्तमत यह है कि ब्रह्म के विषय में अनेक निषेध हो सकते ब्रह्म सच्चिदानन्द है। जैसे अदृष्टम्, अव्यवहार्यम् अग्राह्यम् अलक्ष्यम्, अचिन्त्यम् अद्वैतम् आदि, किन्तु इन निषेधार्थक वाक्यों से ब्रह्म के अपरोक्ष स्वरूप का संकेत स्पष्ट नही होता। सत् चित् आदि पद ब्रह्म के अपरोक्षत्व के संकेतक हैं तथा स्वरूपबोधक हैं इसी लिये इन्हे स्वरूपलक्षण कहा गया है। ये तीनों सत् चित् और आनन्द पद उस एक ही तत्त्व के विषय में निषेध करते हैं अतः तीनों समानार्थी न होते हुए भी तीनों एक ही तत्त्व की ओर हैं। इसीलिये ये ही तीनो पद ब्रह्मस्वरूप बोधक स्वीकार किये गये हैं। तीन से कम होने पर आत्मविषयक अज्ञान की प्रधान शाखाओं का उच्छेदन नहीं हो सकता है और इन तीन से अधिक की भी आवश्यकता नहीं है।

पुनः ब्रह्म के स्वरूप लक्षण पर विचार करते समय एक प्रसंग उपस्थित होता है कि यदि ब्रह्म सर्वथा निर्गुण, निराकार, निर्विशेष है तो माध्यमिकों के शून्य से किस प्रकार भिन्न है। इस विषय में यह सत्य है कि शङ्कराचार्य और नागार्जुन दोनों व्यवहार और परमार्थ के भेद पर बल देते हैं। दोनों जगत् को मिथ्या कहते हैं। दोनों तत्त्व को मन और वाणी के परे मानते हैं। और दोनों ही निषेध या खण्डन विधि पर बल देते हैं। यह समानता होते हुए भी दोनों में भेद यह है कि

1. जिस प्रकार शंकर ब्रह्म को जगत् का कारण और अधिष्ठान मानते हैं, वैसा नागार्जुन कहीं भी स्पष्टतया नहीं कहते। यदि शून्यवादी निरधिष्ठान भ्रम मानते हैं तो उसके विरुद्ध शङ्कराचार्य भ्रम को साधिष्ठान कहते है
2. जहाँ पर ब्रह्म को सच्चिदानन्दस्वरूप कहा गया है, वहाँ शून्य के बारे में ऐसा कुछ नहीं कहा गया है
3. वेदान्त में ब्रह्म और आत्मा का अभेद माना जाता है जबकि शून्यवाद में इस प्रकार की किसी विषय का उल्लेख नही है।

4.6 ब्रह्मज्ञानस्य वैशिष्ट्य प्रतिपादनम्

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा सूत्र में अथ शब्द विचार प्रसंग में धर्म विचार एवं ब्रह्म विचार के फलों में भेद का विचार किया गया है। तथापि ब्रह्म विचार का धर्मविचार की अपेक्षा वैशिष्ट्य प्रतिपादन की दृष्टि से आचार्य शंकर भाष्य में विचार उपस्थित करते हैं। कि श्रुत्यादयो अनुभवादयश्च यथासंभवमिह प्रमाणम्, अनुभवावसानत्वात् भूतवस्तुविषयत्वाच्च ब्रह्मज्ञानस्य। ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्। अर्थात् वेद प्रतिपादकता ब्रह्म और धर्म दोनों में समान रूप से विद्यमान है परन्तु जिज्ञास्य धर्म और जिज्ञास्य ब्रह्म में महान् अन्तर है। ब्रह्म में श्रुति प्रमाण से अतिरिक्त ब्रह्मवेत्ताओं का ब्रह्म साक्षात्काररूप अनुभव भी प्रमाण है। भाष्य में आदि पद के समावेश से मनन एवं निदिध्यासन का भी प्रमाणरूप से ग्रहण होता है। मोक्ष के लिए श्रुति प्रतिपादित ब्रह्मज्ञान का पर्यवसान ब्रह्म साक्षात्कार में होता है। ब्रह्मज्ञान का प्रत्यगभिन्न सिद्ध ब्रह्म ही विषय है और ब्रह्म का साक्षात्कार उसका फल है। श्रोतव्य श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः इत्यादि वाक्य प्रतिपादित मनन ज्ञान की दृढ़ता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। धर्म में श्रुति आदि प्रमाण से अतिरिक्त मनन आदि के प्रमाण की अपेक्षा नही होती। धर्म अतीन्द्रिय होने से नित्य

परोक्ष है। वेद आदि विहित शुभ क्रियाओं से उत्पन्न अदृष्टविशेष पुण्य ही धर्म पदार्थ है तथा निषिद्ध क्रियाओ से उत्पन्न अदृष्ट विशेष पाप ही अधर्म पदार्थ है। मीमांसा के दो प्रमुख प्रस्थान या सम्प्रदाय है भाट्ट मत तथा मिश्र मत। आचार्यकुमारिल के मत में याग, दान आदि क्रियाएँ धर्माधर्म हैं। और पुण्य, पाप को लक्षणा द्वारा गौण रूप से धर्माधर्म कहे गये हैं। तथा प्रभाकरमिश्र के मत में पुष्य, पाप को ही धर्माधर्म कहा गया है, इनका साधन साधन भूत याग, दान आदि क्रियायें भी गौणरूप से धर्माधर्म कहे जाते हैं। व्यवहारे भट्ट नयः के अनुसार भगवान् भाष्यकार आचार्य शंकर ने याग आदि को धर्म मानकर कर्तुमकर्तुम् पद से व्यवहार किया है। धर्म की व्याख्या में विधि आदि की व्याख्या की जाती है। जैसे यजेत यहां विधि प्रत्यय श्रुत है अतः यह विधि है। न सुरां पिबेत् यह निषेध है। ब्रीहिभिर्यवैर्वा यजेत् यह विकल्प विधि है। अतिरात्र नामक याग में षोडशी नामक पात्र का ग्रहण करे, अतिरात्र में षोडशीपात्र का ग्रहण न करे, यह इच्छा अधीन विकल्प विधि है। मा हिंस्यात् यह उत्सर्ग विधि है। सामान्य वाक्य को उत्सर्ग कहा जाता है। क्योंकि वह विशेष वाक्यसे बाधित होता है। अग्नीषोमीयं पशुमालभेत् यह अपवाद है, क्योंकि यह विशेष वाक्य है। इस प्रकार विधि, प्रतिषेध, विकल्प, उत्सर्ग तथा अपवाद धर्म में सार्थक होते हैं। शास्त्र के अनुसार पुरुष बुद्धि की अपेक्षा न करने वाले सब विकल प्रमा रूप होते हैं। परन्तु लोक में पुरुष बुद्धि की अपेक्षा रखने वाले सब विकल्प अप्रमा रूप होते हैं।

सिद्ध ब्रह्म पुनः केवल श्रुति प्रतिपाद्य है। धर्म से विलक्षण होने के कारण ब्रह्म घटादि की तरह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों का विषय नही हो सकता। क्योकि ब्रह्म घट आदि के तरह इन्द्रियों का विषय नहीं है। न चक्षुषा गृह्यते। यन्मनसा न मनुते। केन। इत्यादि श्रुति प्रमाण है, अतः उसका प्रत्यक्ष प्रमाण से व्याप्ति ज्ञान भी नहीं हो सकता। क्योकि इन्द्रियों से ब्रह्म का ज्ञान होता तो जगद्रूप कार्य ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होता। जैसे मृत्तिका का ज्ञान इन्द्रियों से होता है घट मृत्तिका जन्य है, यह भी सर्वानुभव सिद्ध है। लोक में तो जगद्रूप कार्य ही इन्द्रियों से उपलब्ध होता है ब्रह्म तो अतीन्द्रिय है अतः उसका तो प्रत्यक्ष होता नही। प्रत्यक्ष के अभाव में प्रत्यक्ष सापेक्ष व्याप्ति भी संभव नही होगा। यत्कार्य तत्सकारणकम् इससे केवल सामान्यरूप से कार्य कारण वाला है यह सिद्ध होता है, किन्तु यह जगद्रूप कार्य ब्रह्म से जन्य है अथवा किसी अन्य कारण से यह निश्चय नहीं होता। वह कारण विषयक निश्चय तो केवल श्रुति से ही हो सकता है। अतः इस सूत्र में यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यह श्रुतिवाक्य विचार का विषय है। श्रुत्यर्थ की दृढ़ता के लिए गौणरूप से अनुमान भी विचारणीय है।

4.12 सारांश

जन्माद्यस्य यतः सूत्र ब्रह्मसूत्र का द्वितीय सूत्र है। प्रथम सूत्र में ब्रह्म के जिज्ञासा की प्रतिज्ञा करके प्रकृत सूत्र में जिज्ञास्य ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। जिसमें सर्वप्रथम जन्माद्यस्य पद में तद्‌गुण संविज्ञान बहुब्रीहि का लौकिक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया गया है। तथा यतः पद से ब्रह्म की अभिन्ननिमित्तोपादानकारणता बताया गया है। वस्तुतः कुछ अनुमानवादी प्रकृत जन्माद्यस्य यतः सूत्र को अनुमान परक मानकर जगत् के उत्पत्ति स्थिति और लय के कारण रूप ब्रह्म को अनुमान सि सिद्ध स्वीकारते है जिसके प्रकृत पाठ में भाष्यानुसार निराकरण किया गया है। ब्रह्म की श्रुतिप्रमाणता सिद्ध की गई है। यास्क के वर्धते आधि षड्भावविकारों का जन्मादि तीन भाव विकारों में समन्वय भी यथा भाष्य किया गया है। सिद्धान्त भेद से तत्त्वों का भेद दर्शन शास्त्र का स्वभाव है। अतः आत्मविषयक विप्रतिपत्ति का भी निदर्शन करते हुये

उनका परिहार किया गया है। जो इस अधिकरण का प्रमुख प्रतिपाद्य है। तदनन्तर ब्रह्म के तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण का विचार भी अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से किया गया है। तथा निष्कर्ष रूप से आनन्दस्वरूप ब्रह्म की जगत्कारणता प्रदर्शित की गई है। अन्तिम प्रकरण में धर्मज्ञान की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान का वैशिष्ट्य सूचित किया गया है। धर्म ज्ञान श्रुति प्रतिपादित होते हुये भी ब्रह्म ज्ञान श्रुति और अनुभवसिद्ध होने से विशिष्ट है। इस प्रकार इस पाठ्यांश का अवसान किया गया है।

4.14 उपयोगी पुस्तकें

- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, पूर्णानन्दी व्याख्या सहिता, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, आफिस विद्याविलास, प्रेस गोपाल मन्दिर, बनारस
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका सहित, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, चतुःसूत्री स्व. डॉ रमाकान्त त्रिपाठी, उत्तरप्रदेश, हिन्दी संस्थान, महात्मागांधी मार्ग, लखनऊ
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, रत्नप्रभा, भाषानुवाद सहित अच्युत् ग्रन्थमाला, काशी
- चतुःसूत्री ब्रह्मसूत्र कैलाश, आश्रम ब्रह्म विद्यापीठ, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

4.15 बोध प्रश्न

एकवाक्यात्म बोध प्रश्न

1. वेदान्तसूत्र का अपर नाम क्या है?
2. जन्मादि सूत्र का प्रतिपाद्यविषय क्या है?
3. ब्रह्मसूत्र का दूसरा सूत्र क्या है?
4. तद्गुण संविज्ञान का क्या अर्थ है?
5. अतद्गुणसंविज्ञान बहुब्रीहि का क्या लक्षण है?
6. लम्बकर्णमानय में कौन समास है?
7. जन्माद्यस्य यतः सूत्र में कौन समास है?
8. जन्माद्यस्य यतः सूत्र में किस प्रमाण से जन्म का आदित्व स्वीकार किया गया है?
9. तत्त्वज्ञान में किस प्रकार के तर्क या अनुमान सहायक है?
10. तर्क द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती है?
11. षडभावविकार कौन है?
12. वर्धते और विपरिणमते इन दो भाव विकारों किसमे अन्तर्भाव होता है।
13. अपक्षीयते का अन्तर्भाव किसमें होता है।
14. सांख्यमत के अनुसार जगत के उत्पत्ति का मूल कारण क्या है?
15. माध्यमिकबौद्ध इस जगत के उत्पत्ति का आदि कारण किसे को स्वीकार करते हैं।
16. उत्सर्ग किसे कहते हैं?
17. इच्छा अधीन विकल्प विधि वाक्य क्या है?
18. तटस्थ लक्षण की क्या परिभाषा है?

19. स्वरूप लक्षण किसे कहते है?

4.16 बोधप्रश्न के उत्तर

बहुविकल्पात्मक प्रश्न के उत्तर

1. जायते अस्ति विपरिणमते वर्द्धतेऽपक्षीयते विनश्यति यह उक्ति है।

   क. यास्क की

   ख. आचार्य शंकर की

   ग. बादरायण की

   घ. वाचस्पति मिश्र की

2. परिणाम के तीन भेद हैं

   क. धर्म, लक्षण और अवस्था परिणाम।

   ख. साध्य, साधन, इतिकर्तव्यता

   ग. धारणा, ध्यान, समाधि

   घ. काय, वाक्, मनः

3. आचार्य शंकर ने प्रधानादचेतनात् पद से कारणता वाद का निरास किया है।

   क. प्रधानकारणवादी सांख्यमत का ,

   ख. परमाणुकारणवादी न्यायवैशेषिकमत का,

   ग. शून्यकारणवादि माध्यमिकबौद्ध के मत का

   घ. हिरण्यगर्भ की कारणता का।

4. दूसरा अणुभ्यो अभावात् पद से निराकरण किया है।

   क. प्रधानकारणवादी सांख्यमत का ,

   ख. परमाणुकारणवादी न्यायवैशेषिकमत का,

   ग. शून्यकारणवादि माध्यमिकबौद्ध के मत का

   घ. हिरण्यगर्भ की कारणता का।

5. अपक्षीयते भाव विकार का अर्थ है।

   क. जन्म

   ख. वृद्धि

   ग. परिणाम

   घ. ह्रास

6. परिणामवाद को स्वीकार करते हैं।

   क. सांख्य और योग

   ख. न्याय वैशेषिक

   ग. योगाचार

   घ. माध्यमिक

7. न्यायवैशेषिक के मत में जगत् का कारण है।

   क. परमाणु

   ख. प्रधान

   ग. शून्य

   घ. ब्रह्म

8. शून्य को जगत् का कारण मानते हैं।

   क. माध्यमिक

   ख. योगाचार

   ग. न्यायवैशेषिक

   घ. अद्वैतवादी

9. नासतो विद्यते भावः किसकी उक्ति है।

   क. भगवद्गीता की

   ख. ब्रह्मसूत्र की

   ग. न्यायसूत्र की

   घ. बौद्धदर्शन की

10. स्वभाव को जगत् का कारण स्वीकार करते हैं।

   क. योगाचार

   ख. लोकायताभिमत

   ग. माध्यमिक

   घ. सांख्ययोगदर्शन

11. स्वरूपं सत् व्यावर्तक स्वरूपलक्षणम् यह स्वरूप लक्षण वाक्य है।

   क. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म

   ख. यतो वा इमानि भूतानि

   ग. माहिंस्यात् सर्वा भूतानि

   घ. स्वर्गकामो यजेत्

12. जो लक्षण स्वलक्ष्य का स्वरूप होता हुआ स्वलक्ष्य को अन्य अलक्ष्यों से पृथक् सूचित करे वह होता है

   क. स्वरूप लक्षण वाक्य

   ख. तटस्थलक्षण वाक्य

   ग. लक्षण लक्षण वाक्य

   घ. निषेधलक्षण वाक्य

13. भगवान् भाष्यकार आचार्य शंकर ने याग आदि को धर्म मानकर कर्तुमकर्तुम् पद से व्यवहार किया है।

   क. कुमारिल भट्ट के अनुसार

ख. मुरीरिमिश्र के अनुसार

ग. प्रभाकरमिश्र के अनुसार

घ. पार्थसारथिमिश्र के अनुसार

14. यजेत प्रत्यय श्रुत है

क. विधि

ख. निषेध

ग. विकल्प

घ. उत्सर्ग

15. यह निषेध प्रतिपादक वाक्य है।

क. न सुरां पिबेत्

ख. ब्रीहिभिर्यजेत्

ग. अग्नीषोमीयं पशुमालभेत

घ. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

16. यह उत्सर्ग विधि है।

क. मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि

ख. ब्रीहिभिर्यजेत्

ग. अग्नीषोमीयं पशुमालभेत

घ. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

17. यह अपवाद वाक्य है

क. मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि

ख. ब्रीहिभिर्यजेत्

ग. अग्नीषोमीयं पशुमालभेत

घ. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

सत्यासत्य विचारात्मक प्रश्न

1. जन्माद्यस्य यतः ब्रह्म के लक्षण प्रतिपादक सूत्र है।
2. अभावात् पद से शून्यकारणवादि माध्यमिकबौद्ध कारणवाद का निरास किया गया है।
3. संसारिणो वा इस पद से हिरण्यगर्भ की कारणता का निराकरण किया है।
4. श्रुति सिद्ध ईश्वर को नैयायिक अनुमान प्रमाण से सिद्ध करते हैं।
5. ब्रीहिभिर्यवैर्वा यजेत् वाक्य में विकल्प विधि है।
6. पीताम्बरपुरुषः में तद्गुण संविज्ञान बहुब्रीहि हैं।
7. दृष्टसमुद्रं रामं पश्य यहां अतद्गुण संविज्ञान बहुब्रीहि समान है।
8. अद्वैत मतानुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त है।
9. वास्तविक परिवर्तन के बिना परिवर्तन का आभासित होना विवर्त है।

10. जन्माद्यस्य यतः सूत्र ब्रह्म का तटस्थ लक्षणप्रतिपादक सूत्र है।
11. जन्म, स्थिति और लय की कारणता ब्रह्म में केवल माया के अधिष्ठानता काल में रहती है।
12. कादाचित्कत्वे सति व्यावर्तकं तटस्थ लक्षणम्।
13. सत्यं ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म स्वरूपलक्षण प्रतिपादक वाक्य है।
14. निषेधार्थक वाक्यों से ब्रह्म के अपरोक्ष स्वरूप का संकेत स्पष्ट नही होता।
15. सत् चित् आदि पद ब्रह्म के अपरोक्षत्व के संकेतक हैं।
16. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यह वाक्य तटस्थ लक्षणप्रतिपादक वाक्य है
17. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म स्वरूप लक्षण प्रतिपादक वाक्य है।

4.17 बोध प्रश्न के उत्तर

एकवाक्यात्म बोध प्रश्न के उत्तर

1. शारीरक भाष्य या ब्रह्म सूत्र।
2. अद्वैतब्रह्म के लक्षण तथा जगतजन्मादिकारणता का विचार किया गया है।
3. ब्रह्मसूत्र का दूसरा सूत्र है जन्माद्यस्य यतः है।
4. जहां विशेषण पदार्थों का क्रिया में अन्वय हो वहां तद्गुणसंविज्ञान बहुब्रीहि समास होता है।
5. जहां समास के घटकी भूत विशेषण पदार्थों का क्रिया में अन्वय न हो वहां अतद्गुण बहुब्रीहि समास होता है।
6. लम्बकर्णमानय में तद्गुणबहुब्रीहि समास है।
7. जन्माद्यस्य यतः सूत्र में तद्गुण संविज्ञान बहुब्रीहि समास है।
8. जन्मनः आदित्वं श्रुतिनिर्देशापेक्षं वस्तुवृत्तापेक्षं।
9. तत्त्वज्ञान में वह अनुमान सहायक है जो श्रुति विरुद्ध नहीं है स्वतंत्र अनुमान तत्त्वज्ञान में सहायक नहीं है।
10. ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष तथा अदृष्टतत्त्व है एवमनुमान व्याप्त्याश्रित होता है अतः ब्रह्म अनुमान का विषय नहीं है।
11. जायते अस्ति विपरिणमते वर्द्धतेऽपक्षीयते विनश्यति।
12. वर्धते और विपरिणमते इन दो भाव विकारों का जायते इस भावविकार में अन्तर्भाव हो गया है।
13. अपक्षीयते का अन्तर्भाव नाश इस भावविकार में हो जाता है।
14. सांख्यमत के अनुसार जगत के उत्पत्ति आदि का कारण त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति या अचेतन प्रधान है।
15. माध्यमिकबौद्ध इस जगत के उत्पत्ति का आदि कारण शून्य को स्वीकार करते हैं।
16. सामान्य वाक्य को उत्सर्ग कहा जाता है। क्योंकि वह विशेष वाक्य से बाधित होता है।
17. अतिरात्रे षोडशी ग्रहणात् वाक्य अतिरात्र में षोडशी नामक याग में षोडशी नामक

पात्र का ग्रहण करे, यह वाक्य इच्छा अधीन विकल्प विधि है।

18. जो लक्षण स्वलक्ष्य में कभी रहकर अपने लक्ष्य का अन्य अलक्ष्यों से पृथक् बोध कराता है वह तटस्थ लक्षण है।
19. जो लक्षण स्वलक्ष्य का स्वरूप होता हुआ स्वलक्ष्य को अन्य अलक्ष्यों से पृथक् सूचित करे वह स्वरूप लक्षण है।

बहुविकल्पात्मक प्रश्न के उत्तर

1. यास्क की
2. धर्म लक्षण और अवस्था परिणाम।
3. प्रधानकारणवादी सांख्यमत का ,
4. परमाणुकारणवादी न्यायवैशेषिकमत का,
5. ह्रास
6. सांख्यऔर योग
7. परमाणु
8. माध्यमिक
9. भगवद्गीता की
10. लोकायताभिमत
11. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म
12. स्वरूप लक्षण वाक्य
13. कुमारिल भट्ट के अनुसार
14. विधि
15. न सुरां पिबेत्
16. अग्नीषोमीयं पशुमालभेत
17. मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि

सत्यासत्य विचारात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. सत्य

11. सत्य
12. सत्य
13. सत्य
14. सत्य
15. सत्य
16. सत्य
17. सत्य

इकाई 5 शास्त्रयोनित्वाधिकरण (ब्रह्मसूत्र 1.1.3)

इकाई का प्रारूप

5.0 उद्देश्य

- शास्त्रयोनित्वाधिकरण की व्याख्या तथा सूत्रार्थ को पाठक समझ सकेंगे।
- ब्रह्म की जगत्कारणता को अद्वैत दृष्टि से समझना।
- ब्रह्म की जगत्कारणता शास्त्र प्रमाण सिद्ध है इस विषय का ज्ञान कर सकेंगे।
- सूत्र की व्युत्पत्ति भेद से अद्वैतमूलक दोनों भाष्यों के अर्थ को समझना।
- शास्त्र योनित्वात् सूत्र अनुमानप्रदर्शक नही है इस विषय का ज्ञान भी अध्येता कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

श्रुति–स्मृति–सूत्रप्रस्थान में प्रतिष्ठित अद्वैतवेदान्तदर्शन मुख्यरूप से ब्रह्म की ही अद्वैत पारमार्थिक सत्ता सिद्ध करता है। वस्तुतः सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म ही अपनी माया शक्ति से जगत् के रूप में विवर्त होता है। अतः प्रतीयमान जगत् आभास मात्र है तथा ब्रह्म सकल जगत का निमित्त कारण तथा उपादान कारण है। ब्रह्म सूत्र के प्रथम अथातोब्रह्म जिज्ञासा सूत्र से अद्वैत ब्रह्म के जिज्ञासा की प्रतिज्ञा करके जन्माद्यस्य यतः सूत्र से उस अद्वैत ब्रह्म की जगत्कारणता प्रदर्शित किया गया है। वस्तुतः ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष है तथापि अपनी मायाशक्ति से सगुण तथा सविशेष रूप से भासित होता है। सगुण सविशेष ब्रह्म ही जगत् का कारण है। लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः इस उक्ति के अनुसार जन्माद्यस्य यतः सूत्र के भाष्य में आचार्यशंकर ने ब्रह्म के स्वरूप लक्षण तथा तटस्थलक्षण का विचार किया है जिसका प्रतिपादन प्रकृत सूत्र के पाठ्यांश में किया गया गया है। अतः ब्रह्म के जगत्कारणता में प्रमाण प्रदर्शन प्रकृत सूत्र का प्रतिपाद्य विषय है। ऋग्वेदादिशास्त्रों का कारण ब्रह्म ही है। तथा ब्रह्म की सत्ता ऋग्वेदादि शास्त्रों से सिद्ध है। इस विषय का विचार प्रकृत शास्त्रयोनित्वात् सूत्र द्वारा किया गया है। यद्यपि सूत्र के शास्त्रस्य योनिः शास्त्रयोनिः, अर्थात् ऋग्वेदादि शास्त्र का कारण ब्रह्म है। तथा शास्त्रं योनिः यस्मिन् इस व्युत्पत्ति के आधार पर योनि शब्द का प्रमाण वाचक व्याख्या करके ऋग्वेदादि शास्त्र जिस कारण स्वरूप ब्रह्म में प्रमाण है।

इस प्रकार दो वर्णकों में व्याख्या किया गया है। जिसका विस्तार पूर्वक विचार इस पाठ्यांश में किया जायेगा।

5.2 शास्त्रयोनित्वात् सूत्र का अर्थ

ऋग्वेद आदि शास्त्र तथा जगत् का कारण होने से ब्रह्म सर्वज्ञ है। अथवा ब्रह्म केवल ऋग्वेद आदि शास्त्र प्रमाणक है अर्थात् ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान में ऋग्वेदादि शास्त्र ही प्रमाण है। भगवान् भाष्यकार ने शास्त्रयोनित्वात् इस सूत्र की दो व्याख्याएँ को हैं। प्रथम वर्णक या प्रथम व्याख्या से ब्रह्म का लक्षण कहा गया है कि जगत् तथा ऋग्वेद आदि का कारण ब्रह्म है और वह सर्वज्ञ है। इसमें क्या प्रमाण है क्योंकि लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः न तु प्रतिज्ञामात्रेण अर्थात् वस्तु की सिद्धि लक्षण और प्रमाण से होती है केवल प्रतिज्ञा मात्र से नहीं। इसलिए दूसरी व्याख्या से ब्रह्म में यतो वा इमानि, तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि इत्यादि श्रुति प्रमाण दिखलाकर जिज्ञासा को पूर्ण किया है। क्योकि जब जन्माद्यस्य यतः इस पूर्वसूत्र में यतो वा इमानि भूतानि इत्यादि श्रुति वाक्यों के उदाहरण पूर्वक ब्रह्म शास्त्र प्रमाणक कहा जा चुका है तब शास्त्रयोनित्वात् इस सूत्रान्तर के रचना की क्या आवश्यकता थी। इसका समाधान देते हैं जन्माद्यस्य यतः इस पूर्वसूत्र में शास्त्र पद का साक्षात् शब्दशः ग्रहण नही है। जिस कारण अध्येताओं को शंका हो सकती है कि जन्माद्यस्य यतः सूत्र में जगत् के जन्म–स्थिति और लय के कारण बताने के लिये अनुमान का प्रयोग किया गया है। जगत् सकर्तृकं कार्यत्वात् घटादिवत् इस अनुमान से जगत् सकर्तृक सकर्तृक सिद्ध होता हैं। परन्तु उसका कर्ता कौन है, ऐसा प्रश्न पुनः उठता है, तो इसके समाधान में जगत् सर्वज्ञ ईश्वर कर्तृकं कार्यत्वात् भूम्यादिवत् जैसे भूमि आदि कार्य हैं, अतः वह सर्वज्ञ ईश्वर कर्तृक हैं, वैसे ही जगद्रूप कार्य भी सर्वज्ञ ईश्वर का कार्य है यह दूसरा अनुमान ही स्वतन्त्ररूप से विचार करने योग्य है। वेदान्त वाक्य नहीं। इस प्रकार की शंका के निवृत्ति के लिये भगवान् सूत्रकार वादरायण ने शास्त्रयोनित्वात् इस नवीन सूत्र की रचना की है। अर्थात् यहां वेदान्त वाक्य ही विचार के विषय है अनुमान नहीं। पूर्वपक्ष में ब्रह्म में सर्वज्ञत्व अनिश्चित है, सिद्धान्त में वह निश्चित है।

5.3 प्रथमवर्णक व्याख्या

वस्तुतः शास्त्रयोनित्वात् यह ब्रह्म सूत्र का तीसरा सूत्र है। तथा शास्त्रयोनित्वात् सूत्र का अर्थ योनि शब्द के अर्थ के स्पष्ट होने से से स्पष्ट होता है। योनिः इस पद की इस प्रकार व्युत्पत्ति है। शास्त्रस्य योनिः कारणं शास्त्र योनिः। तथा शास्त्रं योनिः प्रमाणं यस्मिन् शास्त्र योनिः। योनि शब्द कारण वाचक है। अतः सूत्रार्थ है जो ऋग्वेदादि शास्त्र की योनि या कारण है वह ब्रह्म है। **न हीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोस्ति।(ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य)** इसमे प्रमाण देते हैं **यद्यद्विस्तरार्थं शास्त्रं यस्मात्पुरुषविशेषात्संभवति यथा व्याकरणादि पाणिन्यादेः ज्ञेयैकदेशार्थमपि स ततोप्यधिकतरविज्ञान इति प्रसिद्धं लोके। (ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य)।** इससे दो बातें स्पष्ट होती है प्रथम तो यह कि ब्रह्म की सर्वज्ञता सिद्ध है अर्थात् ब्रह्म सर्वज्ञ है यः सर्वज्ञः स सर्ववित्। तथा दूसरे ब्रह्म की कारणता सिद्ध है। अर्थात् ऋग्वेदादि शास्त्र का एकमात्र कारण ब्रह्म ही हो सकता है। इसमें ऋग्वेदादि शास्त्र तथा तर्क दोनों ही प्रमाण हैं। क्योकि ब्रह्म की कारणता शास्त्र से भी सिद्धा है तथा तर्क से भी सिद्ध है। वृहदारण्यक उपनिषद् में ऋषि कहता है कि **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् यत् ऋग्वेदः** अर्थात् साक्षात् श्रुति कहती है कि ब्रह्म ही ऋग्वेदादि का कारण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कर्मवादी मीमांसको के अनुसार वेद की

अपौरुषयता का निराकरण हो जाता है तथा अन्य दार्शनिकों के मत का जिनके अनुसार वेद मानव कृत है उनका भी निराकरण हो जाता है। इसमें प्रथम मीमांसक वेद को अपौरुषेय मानते हैं इनके अनुसार जगत् और वेद अनादि है। वेदः अपौरुषेयः अजन्यत्वात् आत्मवत्। मीमासकों के मत में वेद नित्य है इसका कोई कर्ता नही है। उसी प्रकार जगत् भी नित्य है। तथा दूसरा मत जिनके मत में पुरुषकृत वेद है अर्थात् जो वेद को पौरुषेय स्वीकार करते हैं उनके मत में वेदः पौरुषेयः जन्यत्वात् भारतादिवत जैसे महाभारतादि शास्त्र पौरुषेय है वैसे ही वेद भी पुरुष कृत है। प्रथम मीमांसकों के मत का विचार करें तो उनके अनुसार जगत् और वेद अनादि है। परन्तु वेदान्त की परम्परा में जगत की सृष्टि और प्रलय स्वीकार किया गया है अर्थात् जगत् अनादि नही है। परन्तु जगत् के अनित्य होने पर भी वेद पुरुषकृत नही है यह वेदान्तियों का मत् है। क्योंकि तर्क दृष्टि से भी यह उचित प्रतीत नही होता कि वेद किसी पुरुष द्वारा रचित है। वेद का विषय अदृष्टवस्तु है जैसे पाप, पुष्प, स्वर्ग, नरक, देवी, देवता, एवं ब्रह्म आदि। इन विषयों के किसी भी अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाण से ज्ञेय होने पर वेद की निरर्थकता सिद्ध होती। क्योंकि प्रत्येक युग में मनुष्य इनको अपने प्राप्त साधनों से ही जान लेता किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। श्रुति की परिभाषा ही यही है कि प्रमाणान्तर से अगम्य वस्तुओं का ज्ञान कराने वाला अर्थात् जिसका किसी अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जो ज्ञान न हो सके उसका ज्ञान कराने वाला श्रुति है। पुनः श्रुति के प्रतिपाद्य स्वर्ग नरकादि विषयों का निषेध किसी प्रमाण के द्वारा हो नहीं सकता क्योंकि कोई भी प्रमाण उसी का निषेध कर सकता है जो उसका विषय हो परन्तु अदृ ष्ट विषय अन्य प्रमाण के विषय नहीं है या अन्यप्रमाण के द्वारा ज्ञातव्य है। अतः अन्य प्रमाण के द्वारा उनका निषेध भी नहीं हो सकता है। उनमें अविश्वास किया जा सकता है लेकिन यदि अविश्वास निराधार है तो उसका निराकरण भी किया जा सकता है। लेकिन ब्रह्म के विषय में तो यह भी नहीं कहा जा सकता कि ब्रह्म सर्वथा लोकोत्तर है। ब्रह्म का अनुभव तो किया जा सकता है। ब्रह्मज्ञान के लिए गुरु की आवश्यकता है, यह सर्वविदित है, गुरु ऐसा हो जो नित्य मुक्त सर्वज्ञ हो। जिसे ईश्वर कहा गया है। जिससे वेदो की उत्पत्ति स्वीकार की गई है। इस प्रकार आदि गुरु के रूप में और वेद के रचयिता के रूप में ब्रह्म ईश्वर की अनिवार्यता सिद्ध होती है। यद्यपि वेदान्त में ईश्वर के महत्त्व को कुछ भ्रान्त लोग नहीं समझते, और केवल माया और ब्रह्म की महत्ता ही स्वीकार करते हैं परन्तु तत्त्व की दृष्टि से भले ही ये दोनों महत्त्व न रखते हो किन्तु तत्त्वज्ञान की दृष्टि से मायोपहित ब्रह्म रूप ईश्वर का महत्त्व स्वीकार तो करना ही पड़ेगा। यही इस शास्त्र योनित्वात् सूत्र की शिक्षा है तथा वैशिष्ट्य भी है।

पुनः यहां जिज्ञासा होती है कि ब्रह्म का ज्ञान ऋग्वेदादि शास्त्र द्वारा होता है तथा ऋग्वेदादि शास्त्र स्वयं ब्रह्म द्वारा रचित स्वीकार करने पर अन्योन्याश्रय दोष है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि ब्रह्म का ज्ञान मात्र ऋग्वेदादि शास्त्र पर निर्भर है ब्रह्म का अस्तित्व शास्त्र पर आश्रित नही है। अतः उत्पत्ति की दृष्टि से ऋग्वेदादि शास्त्र ब्रह्म कृत है। परन्तु ज्ञान की दृष्टि से ऋग्वेदादि शास्त्र की प्राथमिकता है। अर्थात् ब्रह्म के ज्ञान में शास्त्र ही प्रमाण है। यह सिद्ध होता है।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ज्ञान और चैतन्य का भेद है। ब्रह्म प्रकाश या चैतन्यस्वरूप है, किन्तु ज्ञान स्वरूप या वृत्तिज्ञान रूप नहीं है। यदि ब्रह्म वृत्तिज्ञान स्वरूप होता तो अविद्या क्षणमात्र भी नहीं रहती। अविद्या का नाश हो जाता। परन्तु अविद्या का विरोध प्रकाश या चैतन्य से नहीं है बल्कि विद्या या प्रमाणजन्य ज्ञान से है। अतः ब्रह्म में अविद्या होते हुए भी उसका नाश तभी होता है जब प्रमाणजन्य वृत्तिज्ञान उत्पन्न होता है। ईश्वर में वह ज्ञान है जो अविद्या का नाशक होता है। इसीलिये

ईश्वर सर्वसमर्थ है। अर्थात् वह अपने को ब्रह्म के रूप में जनता है। यहां यह नही कहना चाहिये कि ईश्वर सत्यस्वरूप वेद को उत्पन्न करता है। ईश्वर सत्य को उत्पन्न नहीं करता है अपितु सत्यज्ञान को उत्पन्न करता है। सत्य तो नित्य है। इस दृष्टि से सत्य ईश्वर से परे है, क्योंकि ईश्वर अपने को ब्रह्मरूप में जान कर ही सत्य का ज्ञाता होता है, लेकिन ईश्वर ब्रह्म से भिन्न भी नहीं है, क्योंकि वह अपने को स्वयं ब्रह्म के रूप में जानता है, अर्थात् ज्ञान की दृष्टि से ईश्वर और ब्रह्म भिन्न होते हुए भी तत्त्व की दृष्टि से दोनों एक ही है। उनको उच्चतर और निम्नतर कहना ठीक नहीं है।

5.4 द्वितीयवर्णक व्याख्या

तीसरे शास्त्रयोनित्वात् सूत्र का शंकराचार्य ने एक दूसरा अर्थ भी किया है। वह यह है कि ब्रह्म वह है जो शास्त्र के द्वारा जाना जाय। उनका कहना यह है कि दूसरे सूत्र में जन्माद्यस्य यतः यह स्पष्ट नहीं है कि जगत् के रूप में ब्रह्म शास्त्र के द्वारा ज्ञातव्य है। इसी को इस तृतीय सूत्र में स्पष्ट कर दिया गया है। अर्थात् ऋग्वेदादि शास्त्र ब्रह्म के स्वरूप ज्ञान में योनि या कारण हैं। शास्त्र जगज्जन्मादि के कारणरूप ब्रह्म है इसका ज्ञान केवल शास्त्र से ही हो सकता है। यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते इत्यादि वाक्य ब्रह्म की जगत्कारणता सिद्ध करते हैं। भाष्यकार स्पष्ट करते हैं। (ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य)। शास्त्रादेव प्रमाणात् जगतो जन्मादिकारणं ब्रह्माधिगम्यते इत्यभिप्रायः। इससे यह सिद्ध है कि ब्रह्म ऋग्वेदादि का कारण है। तथा ऋग्वेदादि के द्वारा ही ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान होसकता है। इति।

5.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि शास्त्र योनित्वात् सूत्र वस्तुतः जन्माद्यस्य यतः सूत्र का ही पूरक है। क्योंकि जन्माद्यस्य यतः सूत्र से ब्रह्म के स्वरूप एवं तटस्थलक्षण का विचार करके प्रकृत शास्त्र योनित्वात् सूत्र से ब्रह्म की जगत्कारणता में प्रमाण उपन्यास किया गया है। प्रकृत सूत्र का दो वर्णकों में व्याख्या करने का अभिप्राय वस्तुतः सूत्र में प्रयुक्त योनि पद की द्वयर्थकता है इससे ऋग्वेदादि शास्त्र की व्यापकता भी सिद्ध होती है तथा शास्त्र की ब्रह्म में प्रमाणरूपता भी सिद्ध होती है। इसी प्रकार ब्रह्म ही जगत् और ऋग्वेदादि का कारण है इसमें प्रमाण भी सिद्ध होता है। पुनः सूत्र में पञ्चम्यन्त पद श्रुत है पञ्चम्यन्त हेत्वर्थक होता है परन्तु यहां प्रकृत सूत्र होत्वर्थक नही है यह बात भी द्वितीय वर्णक की व्याख्या में स्पष्ट किया गया है इस प्रकार संक्षेप में ही भाष्य कार आचार्यशंकर ने शास्त्रयोनित्वात् सूत्र की दो वर्णकों में व्याख्या की है इस पाठ के अध्ययन से अध्ययनार्थी सूत्र के अभिप्राय को भलीभांति समझ सकेंगे।

5.6 उपयोगी पुस्तकें

- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, पूर्णानन्दी व्याख्या सहिता, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, आफिस विद्याविलास, प्रेस गोपाल मन्दिर, बनारस
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका सहित, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, चतु:सूत्री स्व. डॉ रमाकान्त त्रिपाठी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, महात्मागांधी मार्ग, लखनऊ
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, रत्नप्रभा भाषानुवाद सहित, अच्युत् ग्रन्थमाला, काशी
- चतु:सूत्री ब्रह्मसूत्र, कैलाश आश्रम ब्रह्म–विद्यापीठ, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

5.7 बोधप्रश्न

1. अद्वैत मत में ब्रह्म को सर्वज्ञ क्यों कहा गया है।
2. ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान किस प्रमाण से हो सकता है
3. शास्त्र योनित्वात् सूत्र के प्रथम वर्णक में योनि पद का क्या अर्थ है?
4. शास्त्रयोनित्वात् इस सूत्र के की रचना की क्या आवश्यकता थी।
5. शास्त्रयोनित्वात् यह ब्रह्म सूत्र का कौन सा सूत्र है।
6. अविद्या का नाश किससे होता है।
7. ईश्वर यथार्थवृत्तिज्ञान किससे जन्य है?
8. पञ्चम्यन्त पद किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है?
9. ब्रह्म का तटस्थ लक्षण प्रतिपादक वेदान्त वाक्य क्या है?
10. ब्रह्म का स्वरूपलक्षण प्रतिपादक वेदान्त वाक्य क्या है?

बहुविकल्पात्मक बोध प्रश्न

1. शास्त्रयोनि पद की प्रथम व्युत्पत्ति किस अर्थ में है
   - क. कारण अर्थ में
   - ख. प्रमाण अर्थ में
   - ग. स्वरूपलक्षण प्रतिपादक अर्थ में
   - घ. तटस्थलक्षण प्रतिपादक अर्थ में
2. शास्त्रयोनि पद की द्वितीय व्युत्पत्ति किस अर्थ में है
   - क. कारण अर्थ में
   - ख. प्रमाण अर्थ में, स्वरूपलक्षण प्रतिपादक अर्थ में
   - ग. तटस्थलक्षण प्रतिपादक अर्थ में
3. योनि शब्द की कारण वाचक व्युत्पत्ति है।
   - क. प्रथम वर्णक में
   - ख. द्वितीय वर्णक में
   - ग. मीमांसक मत में
   - घ. न्याय मत में
4. वेद को पौरुषेय मानते है
   - क. नैयायिक
   - ख. मीमांसक
   - ग. वेदान्ती
   - घ. उक्त सभी
5. वेद को अपौरुषेय मानते हैं।
   - क. मीमांसक

ख. बौद्ध

ग. जैन

घ. नैयायिक

6. वेद का मुख्य रूप से प्रतिपाद्य विषय है।

क. अदृष्टवस्तु है जैसे पाप, पुष्प,

ख. दृष्ट वस्तु जैसे घट पटादि

ग. इतिवृत्त या इतिहास

घ. प्रमाणमीमांसा

7. वेद की निरर्थकता सिद्ध होती।

क. प्रत्यक्षादि से ज्ञेय विषय विषयक होने पर

ख. अदृष्ट विषय के प्रतिपादक होने से,

ग. ब्रह्म में प्रमाण होने से

घ. ब्रह्म कृत होने से

8. अद्वैत मत में वेदों की उत्पत्ति किससे स्वीकार की गई।

क. ईश्वर से

ख. पुरुष से

ग. स्वभाव से

घ. शून्य से

9. मायोपहित चौतन्य ईश्वर का महत्त्व है

क. अद्वैतमत में

ख. मतद्वैत मत में

ग. मीमांसक मत में

घ. न्याय मत में

10. ब्रह्म ज्ञान का कारण ऋग्वेदादि शास्त्र तथा शास्त्र का कारण ब्रह्म में कौन दोष है

क. अन्योन्याश्रय दोष है।

ख. आत्माश्रयदोष

ग. अनवस्थादोष

घ. चक्रकदोष

सत्यासत्य विचारात्मक बोध प्रश्न

1. ईश्वर से वेदो का कर्ता है। सत्य

2. तत्त्वज्ञान की दृष्टि से मायोपहित ब्रह्म रूप ईश्वर का महत्त्व है। सत्य

3. ब्रह्म का ज्ञान मात्र ऋग्वेदादि शास्त्र पर निर्भर है सत्य

4. ब्रह्म का अस्तित्व शास्त्र पर आश्रित है। असत्य

5. उत्पत्ति की दृष्टि से ऋग्वेदादि शास्त्र ब्रह्म कृत है। सत्य
6. ज्ञान की दृष्टि से ऋग्वेदादि शास्त्र प्रमाण है। सत्य
7. अविद्या का नाश प्रमाणजन्य वृत्तिज्ञान से होता है। सत्य
8. वृत्तिज्ञान ईश्वर में होता है है सत्य
9. ईश्वर सत्य को उत्पन्न नहीं करता है सत्य
10. सत्य तो नित्य है। सत्य
11. सत्य ईश्वर से परे है सत्य
12. ज्ञान की दृष्टि से ईश्वर और ब्रह्म भिन्न हैं। सत्य
13. तत्त्व की दृष्टि से ईश्वर और ब्रह्म एक ही है। सत्य
14. ऋग्वेदादि शास्त्र ब्रह्म के स्वरूप ज्ञान में योनि या कारण हैं। सत्य

बोध प्रश्न के उत्तर

एकवाक्यात्मक बोधप्रश्न के उत्तर

1. शास्त्र तथा जगत् का कारण होने तथा सच्चिदानन्द स्वरूप होने से अद्वैत मत में ब्रह्म को सर्वज्ञ कहा गया है
2. केवल ऋग्वेद आदि शास्त्र प्रमाण से ही ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान हो सकता है।
3. शास्त्र योनित्वात् सूत्र के प्रथम वर्णक में योनि पद कारणार्थ है।
4. जन्माद्यस्ययतः सूत्र में शब्दशः शास्त्र पद के अग्रहण के कारण इस सूत्र की रचना गई

5. शास्त्रयोनित्वात् यह ब्रह्म सूत्र का तीसरा सूत्र है।
6. अविद्या का नाश वृत्ति ज्ञान से होता है।
7. यथार्थवृत्तिज्ञान ईश्वर से उत्पन्न होता है।
8. पञ्चम्यन्त पद कारण तथा प्रमाणार्थक है।
9. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते वेदान्त वाक्य ब्रह्म का तटस्थ लक्षण प्रतिपादक है
10. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यह वेदान्त वाक्य ब्रह्म का स्वरूपलक्षण प्रतिपादक वाक्य है

बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. कारण अर्थ में
2. प्रमाण अर्थ में
3. प्रथम वर्णक में
4. नैयायिक
5. मीमांसक
6. अदृष्टवस्तु है जैसे पाप, पुण्य,
7. प्रत्यक्षादि से ज्ञेय विषय विषयक होने पर
8. ईश्वर से
9. अद्वैतमत में

10. अन्योन्याश्रय दोष है।

सत्यासत्यात्मक बोध प्रश्न के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. सत्य
11. सत्य
12. सत्य
13. सत्य
14. सत्य

इकाई 6 समन्वयाधिकरण (ब्रह्मसूत्र 1.1.3)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

इस सूत्र के अध्ययन से अध्ययनार्थि निम्न विषयों का ज्ञान कर सकेंगे। अतः इस सूत्र का उद्देश्य है

- प्रथमतः सूत्रार्थ का ज्ञान करना।
- वेदान्तवाक्यों का मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म ही है यह जानना।
- ब्रह्म उपासना विधि का अंग नही है इसका ज्ञान करना।
- ब्रह्मात्म्यैकत्व विज्ञान केवल एक काल्पनिक तादात्म्य नही है इस विषय का ज्ञान करना।
- ब्रह्मात्म्यैकत्व विज्ञान के असम्पत रूप होने का ज्ञानकरना।
- वेदान्तवाक्यों के क्रिया प्रतिपादक नहीं हैं यह जानना।
- मोक्ष स्वरूप ब्रह्म उत्पाद् विकार संस्कारादि से रहित हैं इस विषय का ज्ञान करना
- वेदान्तवाक्य

6.1 प्रस्तावना

आचार्यशंकर ने ब्रह्मसूत्र भाष्य के आरम्भ में अध्यासभाष्य के द्वारा जगत का असारत्व व्यवस्थित रूप से प्रतिपादन किया है। तथा प्रथम अध्याय के प्रथम पाद के प्रथम जिज्ञासाधिकरण में ब्रह्मविचार की प्रतिज्ञा करके द्वितीय सूत्र में ब्रह्म के जगत्कारणत्व सिद्ध किया गया है। तृतीय सूत्र के दो वर्णकों द्वारा ब्रह्म को ऋग्वेदादि शास्त्रों का कारण तथा ऋग्वेवादि शास्त्रों को ब्रह्म में प्रमाण बताया गया है तथा ऋग्वेदादिशास्त्र तथा ब्रह्म में अन्योन्याश्रयादि दोषों का भी परिहार किया गया है। प्रकृत चतुर्थसूत्रात्मक समन्वयाधिकरण में वस्तुतः वेदान्तवाक्यों का ब्रह्मप्रतिपादन में तात्पर्य निश्चय किया गया है। प्रकृत सूत्र में यह बताया गया है कि सकल वेदान्तवाक्य ब्रह्म के जगत्कारणणता का ही प्रतिपादन करते हैं अर्थात् ब्रह्म वेदान्तवाक्य बोध्य है। वेदान्तवाक्यों का विषय क्रिया आदि का प्रतिपादन करना नही है। ब्रह्म परिनिष्ठित भूतवस्तु है सिद्ध वस्तु है अतः किसी क्रिया का अंग नही हो सकता न ही ब्रह्म में किसी प्रकार का विकारादि की संभावना है। ब्रह्म नित्य विज्ञान रूप है। अतः नित्यविज्ञानस्वरूप ब्रह्म का प्रतिपादन ही वेदान्त वाक्यों का विषय है।

6.2 सूत्रार्थविचार

तत्तु समन्वयात् सूत्र में तीन पद हैं तत् तु और समन्वयात। सूत्रोक्त तत् पद से तात्पर्य है वह जगज्जन्मादि के कारण स्वरूप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ब्रह्म। जो अनादि अनन्त सच्चिदानन्दरूप है। **सदेव सोम्येदमग्र आसीत**। अर्थात् उत्पत्ति से पहले एकमात्र अद्वितीय सत् ही था। **एकमेवाद्वितीयम्** (छान्दोग्योपनिषद् 6–2–1) **आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्** (ऐतरेयोपनिषद् 211–1) तदेतद् ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्। तत् वह ब्रह्म माया रूप उपाधि से नाना रूपों को प्राप्त हुआ जो है एतद् यह कारण रहित, कार्य रहित, विजातीय द्रव्यसे रहित, अबाह्य अद्वितीय है। **अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः** (बृहदारण्यकोपनिषद् 2–5–19) यह आत्मा ही सबका अनुभव करने वाला ब्रह्म है। **ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्** (मुण्डकोपनिषद् 2) यह अमृत अविनाशी ब्रह्म ही आगे है इत्यादि वाक्य सब वेदान्तों में तात्पर्य से इसी अर्थ में प्रतिपादक रूप से समनुगत अर्थात् समन्वित हैं। इत्यादि वेदान्तवाक्य द्वारा बोध्य है क्योकि वेदान्त वाक्यों का ब्रह्म में ही समन्वय देखा जाता है। **तु शब्दः पूर्वपक्षव्यावृत्त्यर्थः।** तु शब्द पूर्व पक्ष के निराकरण के लिए है। तृतीय समन्वयात् पद का अर्थ है सम्पूर्ण वेदान्तवाक्यों का उस अद्वितीय अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्म के प्रतिपादन में तात्पर्य है।

तत्तु समन्वयात् सूत्र के व्याख्यान में मुख्य रूप से वेदान्त वाक्यों का उद्देश्य केवल विधिकर्म बताना नही है अपितु ब्रह्म के स्वरूप प्रतिपादन में है। आचार्यशंकर ने भाष्य के आरम्भ में ही **कथं पुनः शास्त्र प्रमाणकत्वमुच्यते** इस वाक्य से पूर्वपक्षी के मत को उपस्थित करते हुये उसका निराकरण किया है। अतः इस सन्दर्भ में मीमांसकों के मत को पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत कर वेदान्त वाक्यों के विषय में जिज्ञासा की गयी हैं कि **आम्नायस्य कियार्थत्वात् आनर्थक्यमतदर्थानाम्** (ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य)। अर्थात् शास्त्र क्रियापारक है। अतः वेदान्त वाक्य क्रियार्थक होने से अनर्थक है। क्योकि ब्रह्म सिद्ध वस्तु है सिद्धवस्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा जानी जा सकती है। प्रत्यक्षादि प्रमाणगम्य होने से वेदान्तादि शास्त्र ब्रह्म को विषय नही करते। अतः वेदान्तवाक्यों की अनर्थकता सिद्ध है। पुनः सिद्धवस्तु हेय और उपादेय शून्य होने से भी पुरुषार्थ का विषय नहीं हो सकती। इस प्रकार के जिज्ञासा के समाधानार्थ सूत्र में तु का प्रयोग है। तु शब्द से यहां पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति सूचित होती है अर्थात् वेदान्त वाक्यों से ही जगत् की सृष्टि,

स्थिति, लय आदि के कारण रूप ब्रह्म का ज्ञान होता है, क्योंकि सभी वेदान्त वाक्यों का समन्वय उसी अर्थ में होता है। ऐसा अर्थ न करने से या अर्थान्तर करने से श्रुतिहानि का प्रसंग उठता है। पुनः वेदान्त वाक्यों का प्रयोजन किसी कर्ता का ज्ञान कराना है यह नही कहना चाहिये क्योंकि तत्केन कं पश्येत् आदि वाक्यों से क्रियाकारक फल का निराकरण हो जाता है। पुनः ब्रह्म सिद्धवस्तु या परिनिष्ठित वस्तु है अतः ब्रह्म प्रत्यक्षादि का विषय है ऐसा मानना भी अनुचित है, क्योंकि ब्रह्म तत्वमसि आदि वाक्यों द्वारा श्रुति बोध्य है। सर्वथा निर्गुण निराकार होने के कारण ब्रह्म प्रत्यक्षादि का विषय नहीं हो सकता। ब्रह्म पुरुषार्थ का विषय है क्योकि सिद्धवस्तु यह मत भी ठीक नही है। क्योंकि ब्रह्म के स्वरूप ज्ञान मात्र से फल की प्राप्ति या सर्वक्लेशों का नाश होता है। यदि उपासना का अर्थ देवताओं की उपासना है तो उसका वेदान्त से विरोध नहीं है, किन्तु ब्रह्म को उपासना क्रिया का विषय नहीं कह सकते, क्योंकि ब्रह्म में द्वैत का सर्वथा अभाव होने के कारण या हेयोपादेय शून्य होने के कारण उसमें क्रिया कारकादि की सम्भावना नहीं है। एक बार ब्रह्मज्ञान हो जाने के बाद पुनरू द्वैत की उत्पत्ति नहीं हो सकती, और ब्रह्मज्ञान के बाद उपासना सम्भव नही है। यद्यपि यह सही है कि अन्यत्र वेदवाक्यों का प्रामाण्य विधि या क्रिया के उपदेश में है तथापि आत्मज्ञान का क्लेशनाश में पर्यवसान होने से वेदान्त वाक्यों की प्रामाणिकता सिद्ध है।

6.3 ब्रह्म की शास्त्र प्रमाणकता

वेद के पाँच विभाग हैं विधि, निषेध, अर्थवाद, मन्त्र और नामधेय। पाँच विभागात्मक वेद साक्षात् या परम्परा से यज्ञ आदि क्रियाओं तथा उनके उपकरण अङ्गों का प्रतिपादन करता है। जैसे स्वर्गकामो यजेत, दध्ना जुहोति इत्यादि वाक्य क्रिया स्वरूप यज्ञादि के प्रतिपादक हैं। अतः सर्वत्र वेद शास्त्र क्रिया प्रतिपादन परक ही कहा गया है। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। सदेव सोम्येदमग्र आसीत् इत्यादि वेदभाग वेदान्त वाक्य याग आदि क्रिया का प्रतिपादन नही करते। क्रिया प्रतिपादक न होने से तथा सिद्ध वस्तु ब्रह्म के प्रतिपादक होने से ये शास्त्र निष्फल प्रयोजन रहित हैं। अप्रमाण रूप हैं। तथा इन वेदान्तवाक्यों के अप्रमाण रूप होने से ब्रह्म शास्त्र प्रमाणक नही हो सकता। पुनः यदि वेदान्तवाक्यों का प्रयोजन देवतादि के स्वरूप का प्रकाशन स्वीकार किया जाय तो भी वेदान्तवाक्य क्रियाविधि या उपासना विधि के अंग ही होंगे। सिद्धवस्तु तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषय होता है। इसलिये वेदान्त वाक्य भी साक्षात् क्रिया प्रतिपादक नही हैं तथापि क्रिया के अङ्गभूत कर्ता तथा देवता का ज्ञान कराते हुए क्रिया के अङ्ग मानना चाहिये। क्योकि जैसे तत्वमसि इस वाक्य में ईश्वर वाचक तत् पद क्रिया के अङ्ग भूत देवता का और जीव वाचक त्वम् पद याग कर्ता का बोधक है। इस प्रकार तत् और त्वम् पद देवता और कर्ता की स्तुति के लिये प्रयुक्त हैं। इस प्रकार वेदान्तवाक्य कर्ता, देवता तथा फल आदि की स्तुति द्वारा क्रिया के अङ्ग होकर सफल होते हैं ऐसा स्वीकार करना चाहिये। इसका समाधान वेदान्ती कहते हैं। कर्म के प्रकरण में अनुक्त वेदान्त वाक्य कर्म के अंग नही हो सकते। पुनः वेदान्त वाक्यों को श्रुति प्रतिपादित सिद्धवस्तु ब्रह्म प्रतिपादक स्वीकार न करके क्रिया प्रतिपादक मानने का प्रयोजन होना चाहिये यदि सिद्धवस्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणगम्य होने से शास्त्र द्वारा ज्ञातव्य नही है इसे प्रयोजन माने तो वेद तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के अविषय स्वर्ग आदि फल और उनके साधन भूत यज्ञ आदि कर्मों का प्रतिपादक है। अज्ञातज्ञापकत्वं हि वेदानां प्रामाण्यम्। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से अज्ञात वस्तु का ज्ञापकत्व ही वेदों का प्रामाण्य है। यदि वेद ज्ञात सिद्धवस्तु का वर्णन करे तो वह अनुवादक मात्र होगा। अतः वेदान्त वाक्य को सिद्ध वस्तु परक न मानकर कर्म अथवा उपासना के लिए मानना युक्त है।

यद्यपि वेदवाक्यों का प्रामाण्य यज्ञादि क्रिया के प्रतिपादन में है तथापि ब्रह्मज्ञान का फल संसार का उच्छेद या नाश है अतः वेदान्तवाक्यों के प्रामाण्य संदेहरहित है यह स्वीकार करना चाहिये। यह अनुमान करना अयुक्त है कि वेदवाक्यं प्रामाणिकं विधिपरत्वात्। क्योकि वेद का प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है न कि अनुमानतः परतः।

6.4 वेदान्तवाक्यों का प्रतिपत्तिविधिविषयत्व निराकरण

यद्यपि वेदान्तवाक्यों का ब्रह्म के प्रतिपादन में तात्पर्य है परन्तु उपासनाविधि के अंग के रूप में ही वेदान्त वाक्य ब्रह्म को विषय करते हैं **तद्भूतानानं क्रियार्थेन समाम्नायः।** इत्यादि वाक्य क्रिया का ही प्राधान्य बोधित करते हैं। जिस प्रकार स्वर्गार्थी के लिये अग्निहोत्रादि का उपदेश वेद में किया गया है। उसी प्रकार अमृतत्व के लिये ब्रह्मज्ञान का उपदेश है। यदि वेदान्ती कहे कि कर्ममीमांसा का जिज्ञास्य धर्म है तथा ब्रह्म मीमांसा का जिज्ञास्य नित्य सिद्ध वस्तु ब्रह्म ही है धर्मज्ञान का फल स्वर्ग अनुष्ठानसापेक्ष्य है ब्रह्मज्ञान का फल तद्भिन्न मोक्ष है। यह वेदान्तियों का कथन अयुक्त है क्योंकि **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, सो अन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः आत्मत्येवोपासीत् ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति** इत्यादि वेदान्त वाक्य नित्य सर्वज्ञादि ब्रह्म के उपदेशक वाक्य हैं इन वेदान्त वाक्यों में ब्रह्म का उपदेश विधि के प्रसंग में ही किया गया है। ब्रह्म की ही उपासना से शास्त्र प्रतिपादित अदृष्टफलरूप मोक्ष लाभ होता है। इन वेदान्तवाक्यों के विधि के अंग नही होने से कथन मात्र होने से उनका हेयोपादेयत्व नही होगा। तब वेदान्तवाक्यों की निरर्थकता होने लगेगी। यदि कथन मात्र स्वीकार किया जाये तब भी उद्देश्य तो पूर्ण हो जायेगा जैसे यह रस्सी है सर्प नही यह कथन मात्र से सर्प का भ्रम चला जाता है परन्तु यह आत्मा असंसारी है कहने से आत्मा के असंसारित्व के सन्दर्भ में ब्रह्मबोधक वाक्यों के श्रवण मात्र से जगद्विषयक भ्रम कानाश नही होता। जिसने ब्रह्मबोधक श्रुति का श्रवण किया है वह भी सुखदुख तथा आत्मा के संसारित्व का अनुभव तो करता ही है। अतः वेदान्तवाक्यों के श्रवण के बाद भी मनन निदिध्यासन विधि का कथन किया गया है। अतः उपासना विधि के विषय होने से ब्रह्म शासत्र प्रमाणक है। यह स्वीकार करना चाहिये ऐसा पूर्वपक्षी मीमांसक का मत है।

उपर्युक्त पूर्वपक्षी के जिज्ञासा का समाधान भाष्यकार करते हैं कि कर्म और ब्रह्मविद्या के फल में भी भेद होता हैं। धर्म और अधर्म का सम्पादन शरीर से ही हो सकता है। तथा इनका सुख दुःख आदि फल भी सशरीर के लिये ही होता है। पुनः धर्म, अधर्म तथा उनके सुख दुख रूप फलों में तारतम्य भी होते हैं। ब्रह्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान के फल अमृतत्व और आनन्द में शरीर अपेक्षित नही है न ही इनमें कोई तारतम्य ही है। श्रुति कहती है अशरीरं वा वसन्तं न प्रियाऽप्रिये स्पृशतः। मोक्ष को धार्मिक क्रिया का फल स्वीकार करें तो प्रिय और अप्रिय या सुख दुःख दोनों का नही हो सकता। अशरीरत्व को ही धर्मानुष्ठान का फलमाने तब भी अशरीरत्व तो आत्मा ही है। वस्तुतः आत्मा सांख्याभिमत प्रकृति के समान परिणामी नित्य नहीं है आत्मा तो कूटस्थ नित्य है वह किसी भी विकारों से रहित है। मोक्ष को धर्मानुष्ठान का फल स्वीकार किया जाय तो मोक्ष भी कार्य हो जायेगा। कार्य होने से मोक्ष अनित्य हो जायेगा। परन्तु मोक्ष को कोई भी मोक्षवादी अनित्य नहीं स्वीकारता। अत एव वेदान्तवाक्य ब्रह्मविद्या के के अनन्तर और मोक्ष के पूर्व किसी भी कार्यान्तर का निषेध करते हैं। ब्रह्मज्ञान और मोक्ष के मध्य कोई कार्यान्तर नहीं है जैसे कोई खड़ा होकर गाता है, कहने से खड़े होने और गाने के मध्य में कोई अन्य क्रिया नहीं होती। इसीप्रकार **तद्धैतत्पश्यन्नृषिवामदेवः** इत्यादि श्रुति भी ब्रह्मसाक्षात्कार और मोक्ष के मध्य कार्यान्तर का निषेध करती है। अतः मोक्ष के प्रतिबन्धक अविद्या की निवृत्तिमात्र ही मोक्ष है। न्यायदर्शन में भी दुखजन्मप्रवृत्ति आदि

सूत्र के द्वारा मिथ्याज्ञान के नाश के नाश से ब्रह्मात्मैकत्व विज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। अतः यह स्वीकार करना होगा कि ब्रह्म विज्ञान रूप मोक्ष वेदान्तवेद्य है तथा वेदान्त क्रियाविधि के द्वारा ब्रह्म का प्रतिपादन नही करता।

6.5 ब्रह्मात्म्यैकत्व विज्ञान के संपद्रूपत्वादि का निराकरण

ब्रह्मात्म्यैकत्व ज्ञान संपद्रूप है ऐसा भी नही मानना चाहिये क्योंकि जैसे मन अनन्त है और विश्वेदेवा अनन्त हैं, अर्थात् विश्वे देवों की मन में दृष्टि होने से या मन की उपासना से मन के अनन्त होने से विश्वे देवा अनन्त लोकों को प्राप्त करता है। यहां पर दोनों की समानता के आधार पर अनन्ता दिखाई गयी है। परन्तु ब्रह्म तथा आत्मा के एकत्व के ज्ञान में ऐसी समानता नहीं है। अतः ब्रह्म और आत्मा के एकत्व के ज्ञान को उपासना रूप नही कह सकते। और न तो यह अध्यास रूप ही है। क्योकि जैसे **मनो ब्रह्मेति उपासीत आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः** इत्यादि वाक्य में मन को या सूर्य को ब्रह्म रूप में मानकर प्रतीकोपासना की गई है। इसीप्रकार ब्रह्मज्ञान विशिष्ट क्रिया योग का निमित्त भी नही है। जैसे प्रलयावस्था में वायु सब को निगल लेता है। वैसे ही सुषुप्तिकाल में इन्द्रियादि प्राण में लय हो जाते हैं। वायु और प्राण दोनों में समानरूपता के कारण अभेदमानकर उपासना करना विशिष्ट क्रियायोग है। वायुर्वाव संवगर्रू, प्राणो वाव संवर्गः इत्यादि। पुनः ब्रह्मविज्ञान को संस्कार रूप भी नही कहा जा सकता। जैसे दर्शपूर्णमास में अज्यावेक्षणादि कर्मांग का संस्कार रूप है वैसे ब्रह्मज्ञान संस्कार रूप नही है। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः में द्रष्टव्यः का अर्थ अज्यावेक्षण की तरह देखना नही करना चाहिये। तथा ब्रह्मज्ञान सम्पद्रूप भी नहीं है क्योंकि संपद्रूप ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करने से तत्वमसि अयमात्मा ब्रह्म इत्यादि वाक्यों में साक्षात् एकत्व का प्रतिपादन की निवृत्ति हो जायेगी। तथा **भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः** इत्यादि वाक्यों से जो अविद्यानिवृत्ति कही गई है उसका बाध हो जायेगा। संपद्रूप मानने से ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति इत्यादि वाक्यों का समन्वय भी नही हो सकेगा। अतः ब्रह्मात्मैकत्व केवल काल्पनिक नहीं है। ब्रह्मविद्या या ब्रह्मविज्ञान सिद्धवस्तु है

6.6 ब्रह्मात्म्यैकत्व विज्ञान के पुरुषव्यापारतन्त्रत्वादि निराकरण

ब्रह्म ज्ञान सिद्ध वस्तु है अतः सिद्धवस्तु होने से पुरुष व्यापार के आधीन ब्रह्म विज्ञान नही है। जिस प्रकार प्रत्यक्षादि प्रमाण के विषय वस्तु तन्त्र होते हैं वैसे ही ब्रह्मविज्ञान भी वस्तुतंत्र होता है। उसी प्रकार ब्रह्मविद्या भी वस्तुतंत्र है ऐसा नही कह सकते। क्योकि ब्रह्म का क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। ऐसा भी नहीं सोचना चाहिए कि यह विधिक्रिया या ज्ञानक्रिया का विषय है, क्योंकि ब्रह्म ज्ञात और अज्ञात दोनों से भिन्न कहा गया है। अन्यदेव तत् विदितादन्यो अविदितादधि केन। तथा येनेदं सर्व विजानाति तत् केन विजानीयात। इसी से ब्रह्म को उपासना का विषय भी नहीं मानते क्योंकि स्पष्ट कहा है कि नेदं यदिदमुपासते। यह कहना कि ब्रह्म विषय नहीं है अर्थात् सर्वथा अविषय है तब ब्रह्म का ज्ञान वेदान्तादि शास्त्रों के द्वारा भी नहीं हो सकता ठीक नही है क्योकि शास्त्र का प्रयोजन केवल अविद्या की निवृत्ति मात्र है। अविद्या की ऐकान्तिक आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। शास्त्रों का प्रयोजन ब्रह्म को यह ब्रह्म है, या यह ब्रह्म है यह बताना कदापि नही है। शास्त्र स्पष्टरूप से ब्रह्म को प्रत्यगात्मा के रूप में या अविषय के रूप में ही प्रतिपादित करता है। ब्रह्म तो सर्वथा मन वाणी से परे है। यस्मान्मतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः इत्यादि वाक्यों युक्तियों से ब्रह्म स्वरूप मोक्ष के संपद्रूपत्व अध्यासरूपत्व या विशिष्ट क्रिया योग निमित्तक, या

संस्काररूपत्वादि विविध काल्पनिक विचारों का भी निराकरण हो जाता है। क्योकि इन कल्पनाओं को स्वीकार करने से ब्रह्म रूप मोक्ष निश्चय ही अनित्य हो जायगा। अतः उक्त कल्पनाओं से भिन्न ब्रह्म स्वरूप मोक्ष वेदान्तशास्त्र का प्रतिपाद्य है। वेदान्त वाक्यों के द्वारा ब्रह्म प्राप्य है यह कथन भी नही करना चाहिये क्योकि जो प्राप्य होता है उसे कार्य की अपेक्षा होती है। ब्रह्मज्ञान में कोई कार्य अपेक्षित नही है। ब्रह्म तो नित्य आत्म स्वरूप है तथा सर्वगत सर्वज्ञ है। आत्मा से भिन्न स्वीकार करने पर भी ब्रह्म प्राप्य नही है तथा सर्वगत होने के कारण ब्रह्म सर्वदा सर्वत्र प्राप्त है विभु है व्यापक है।

6.7 मोक्ष के संस्काररूपत्व का निरास

सिद्धवस्तु स्वरूप ब्रह्म तथा ब्रह्म के ज्ञान में किसी भी कार्यापेक्षा का सर्वथा अभाव है। कार्यापेक्षा के प्रवेश लिये ब्रह्म को संस्कार्य कहना सर्वथा अनुचित है। क्योकि संस्कार्य का अर्थ है किसी भी वस्तु में विशेष गुण का आधान करना या उस वस्तु के दोष को हटाना। ब्रह्म में न तो किसी नवीन गुण को जोड़ा जा सकता है और न तो उसमें से किसी दोष को हटाया जा सकता है।ब्रह्म स्वरूप मोक्ष तो नित्यशुद्ध ब्रह्मस्वरूप है। जैसे शीशे पर विद्यमान धूल को हटा कर स्वच्छ किया जाता है वैसे ही अविद्या की निवृत्ति मोक्ष है अतः वह संस्कार है, यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि यदि आत्मा में कोई क्रिया या परिवर्तन सम्भव होता तो आत्मा में अनित्य आ जायेगा। आत्मा के नित्यत्व का प्रतिपादन स्मृति भी करती है कि **अविकार्योऽयमुच्यते** श्रीमद्भगवद्गीता। यदि क्रिया या संस्कार को अन्यत्र माना जाय तो उसका आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। स्नान आचमन आदि से देहाश्रित कर्मों से आत्मा की शुद्धि नही होती जिनके मत में अविद्यादि दोषों के कारण शारीर ही आत्मा है उनके अनुसार स्नानादि से आत्मा की शुद्धि होती है क्योंकि आचमनादि से मैं शुद्ध हूं ऐसी प्रतीति उन्ही को होता है। जो शरीर से सम्बद्ध हैं आत्मा तो शरीर से भिन्न है। अतः अद्वैत मत में तो स्नानादि क्रिया से केवल शरीरादि का ही संस्कार होता है न कि शरीरी आत्मा का। अतः जिसमें अहं भाव या देहात्मभाव है उसी से क्रिया होती है और उसी पर क्रिया का प्रभाव भी होता है।

6.8 ज्ञान के मानसी क्रियारूपत्व का निरास

यद्यपि ज्ञान और क्रिया के सन्दर्भ में यह जिज्ञासा होती है कि ज्ञान एक मानसी क्रिया है। परन्तु यह कहना उचित नही प्रतीत होता क्योंकि यद्यपि ज्ञान भी एक मानसिक वृत्ति है, फिर भी उसे क्रिया नहीं कहा जा सकता, क्योंकि क्रिया पुरुष के चित्त व्यापार के अधीन होती है, वस्तु स्वरूप के अधीन नहीं होती, जब कि ज्ञान इसके विपरीत वस्तुस्वरूप के आधीन होता है न कि चित्तव्यापाराधीन। अतः ज्ञान और क्रिया में भेद है। ध्यान चिन्तन आदि भी मानसिक हैं और उनको क्रिया भी कहा जा सकता है। क्योंकि ये पुरुष के द्वारा किये जा सकते हैं, नहीं किये जा सकते हैं, अथवा भिन्न रूप से किये जा सकते हैं। ज्ञान मानसिक व्यापार होते हुए भी क्रिया नहीं है। क्योंकि वह प्रमाण जन्य है। और प्रमाण वह है जिसका विषय यथाभूत वस्तु हो, अतः ज्ञान के विषय में यह करें या यह न करें या भिन्न प्रकार से करें ऐसा प्रश्न उपस्थित नही होता। ज्ञान केवल वस्तुतन्त्र होता है, न तो किसी क्रिया पर निर्भर करता है न पुरुष की इच्छा पर। अतः मानसिक होते हुए भी ज्ञान और क्रिया में भेद है। भाष्यकार स्पष्ट करते हैं कि **पुरुषोवाव गौतमाग्निः**, (शांकरभाष्य1–1–4)। (योषा वाव गौतमाग्निः) इत्यादि वाक्यों में अग्निभाव मानसिक है। विधि विहित होने के कारण यह भाव एक क्रिया है। तथा पुरुष के आधीन है किन्तु लोकसिद्ध अग्नि का ज्ञान न तो पुरुष के

आधीन है न ही विधि विहित है। अपितु वस्तुतन्त्र है। इसलिये लोकसिद्ध अग्नि का ज्ञान ज्ञान है क्रिया नही। अतः ज्ञान को मानसी क्रिया कहना अयुक्त है।

6.9 ब्रह्मज्ञान के विधिकार्यरूपत्व का निरास

जिस प्रकार लोक में ज्ञान को अभिधेय स्वीकार किया गया है वैसे ही ब्रह्मज्ञान भी अभिधेय है। एवं ब्रह्मज्ञान विधि का विषय नहीं है यह सिद्ध किया गया। तथापि ब्रह्म के विषय में विधिपरक वाक्य वैसे ही असफल हो जाते हैं, जैसे पत्थर पर मारा गया तीर। विधि का विषय वही हो सकता है, जो हेय हो या उपादेय हो, किन्तु ब्रह्म परिनिष्ठितवस्तु होने के कारण हेयोपादेय शून्य है। ब्रह्म के विधिविषयक न होने से वेदान्तवाक्यों में जो लिंङ् लोट् प्रत्यय सुने जाते हैं उन वाक्यों का क्या तात्पर्य है ऐसी जिज्ञासा होने पर इसका समाधान करते हैं भष्यकार– **स्वाभाविकप्रवृत्तिविषयविमुखीकरणार्थानि इति ब्रुमः।** अर्थात् मनुष्य की जो स्वाभाविक बहिर्मुखी प्रवृत्ति है, उस प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी करने के प्रयोजन से ही वेदान्तवाक्यों में लिंङ् लोट् आदि प्रत्ययों का प्रयोग देखा जाता है। पुरुष का परम प्रयोजन है मोक्ष। किन्तु जब लौकिक वैदिक कर्मों से या बहिर्मुखी प्रवृत्ति से जीवन के परम उद्देश्य रूप मोक्ष लाभ संभव नही होता तब लौकिक वैदिक कर्मों तथा बहिर्मुखी प्रवृत्ति से मनुष्य को वैराग्य होता है, उस स्थिति में श्रुति आत्मा वा रे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः इत्यादि उपदेश के द्वारा बोधित करती है कि अब आत्मा की ओर चिन्तन् करो अपनी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी करो। तथा जब मनुष्य का ध्यान आत्मा की ओर अन्तर्मुखी होता है तब श्रुति अयमात्मा ब्रह्म या तत्त्वमसि आदि महावाक्य का उपदेश करके आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कराती है। इसलिये ब्रह्मज्ञान का सम्बन्ध किसी क्रिया या हानोपादान से नहीं है यह स्वीकार करना चाहिये। क्योकि ब्रह्मज्ञान होने के बाद कर्तव्याकर्तव्यबुद्धि का अन्त हो जाता है। भाष्यकार आचार्यशंकर ने इसे भूषण कहा है। **अलङ्कारो ह्यस्माककम् यद् ब्रह्मावगतौ सत्यां सर्वकर्तव्यताहानिः कृतकृत्यता चेति।** अर्थात् ब्रह्मज्ञान के अनन्तर सभी प्रकार के कर्त्तव्य अकर्तव्य का अन्त हो जाता है, क्योंकि ब्रह्मज्ञान से सर्वप्राप्ति हो जाती है। शरीर आदि किसी भी विषय की चिन्ता नहीं रह जाती है। मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। **एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमानस्स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।** (श्रीमद्भगवद्गीता।) अतः वेदान्तवाक्य विधि के विषय के रूप में ब्रह्म का बोध नही कराते।

6.10 ब्रह्मज्ञान में विधिनिषेधरूपत्व का निराकरण

ब्रह्मज्ञान स्वरूप मोक्ष या आत्मा किसी विधिनिषेध से अनुबन्धित नही है। आत्मा असंसारी है जिसका उपदेश साक्षात् श्रुति करती है। आत्मा तो सभी विकारशून्य है जन्ममरण से रहित है। परन्तु जन्म मरण से रहित होने से आत्मा नही है इस प्रकार आत्मा का निषेध नही कर सकते। जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते इन चतुर्विध विकारों से रहित होने पर भी अस्ति का निषेध नही कर सकते। क्योंकि जो निषेधकर्ता है वही आत्मा है उसका निषेध कैसे हो सकता है। पुनः आत्मा के अहं प्रत्यय के विषय होने से आत्मा के बोध के लिये उपनिषद् अपेक्षित नही है यह कथन अयुक्त है। क्योंकि उपनिषद् अहं प्रत्यय का बोध नही कराति अपितु अविद्यानाश के द्वारा कूटस्थ सर्वज्ञ सर्वगत साभी स्वरूप आत्मा का उपदेश करता है। अतः वेदान्तवाक्य न किसी विधि के अंग हैं और न वेदान्त वाक्य तथा तत्प्रतिपाद्य जन्ममरणादि रहित आत्मा का निषेध किया जा सकता है। आत्मा सर्वविध हेयोपादेय रहित है, आत्मव्यतिरिक्त सभी पदार्थ विकारवान् होने से नाशवान् हैं। आत्मा अविनाशी है नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव

है। **पुरुषान्न परं किञ्चिद् सा काष्ठा सा परागतिः** (कठोपनिषद् 1–3–11) अतः वेदान्त सिद्ध वस्तुस्वरूप ब्रह्म के प्रतिपादक नही है यह स्वीकार करना अनुचित है।

पुनः यह कहना कि शास्त्र का तात्पर्य कर्मावबोधन है शास्त्र के कर्म प्रतिपादक होने से जिन वाक्यों के द्वारा कर्म का प्रतिपादन नही किया गया है वे वाक्य निरर्थक हैं यह ठीक नही है। क्योकि भूतवस्तु के प्रतिपादक सभी वेद वाक्य निरर्थक होने लगेंगे। पुनः वेद विधिनिषेध से भिन्न भूतवस्तु का प्रतिपादन कर्माङ्ग के रूप में करता है कूटस्थ नित्य वस्तु का उपदेश वेद में नही है। यह कथन भी उचित नही है। क्योकि उपदिष्ट भूतवस्तु क्रिया का अंग होने से क्रिया नही हो जाती। जिनके मत में वेद केवल कर्म की शिक्षा देते है उनके मत में ब्राह्मणो न हन्तव्यः यह वाक्य व्यर्थ हो जायेगा। क्योंकि यह वाक्य न क्रिया परक है न क्रिया का साधन परक है। अतः वेद वस्तु विषयक ज्ञान नहीं देता यह नही कह सकते। जिनके मत में वेद में केवल कर्म विषयक ज्ञान है वे भी स्वीकार करते हैं कि वेद विधिशेष के रूप में वस्तु ज्ञान देता है। यदि वेद विधिशेष के रूप में वस्तुज्ञान देता है तो क्यों नहीं वह नित्य आत्मा के विषय में ज्ञान दे सकता है। विधि शेष होने के कारण वस्तुज्ञान क्रिया नहीं हो जाता। अतः मीमांसकों का यह कहना कि वेद वस्तु ज्ञान नहीं देता उचित प्रतीत नही होता। अद्वैत वेदान्त के मत में श्रुति परिनिष्ठित वस्तुभूत ब्रह्म का ज्ञान कराती है,क्योकि ब्रह्म का ज्ञान श्रुति भिन्न अन्य किसी प्रमाण से नहीं हो सकता।

पुनः यह जिज्ञासा करना कि वेदान्तवाक्यों के श्रवण के अनन्तर भी मनुष्य का संसारित्व बना रहता है। जिससे यह सिद्ध होता है कि केवल वस्तु ज्ञान से किसी चीज की प्राप्ति नहीं होती ठीक नहीं है। क्योंकि ब्रह्मज्ञान होने के बाद पुरुष का संसारित्व नही रहता। वेद इस बात का प्रमाण है कि ब्रह्मज्ञान होने पर अहंभाव के नाश होने से मिथ्याज्ञानजन्य सुख दुःख नहीं रहते। जैसे एक धनिक व्यक्ति धन की हानि होने से दुःखी होता है और प्राप्ति होने से सुखी होता है परन्तु उसी व्यक्ति के सन्यासग्रहण करने के बाद धन प्राप्ति और धन हानि का प्रभाव उस पर नहीं होता। श्रुति का स्पष्ट संकेत है कि **अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः**(छान्दोग्योपनिषद् 8–12–1)। पुनः अशरीरत्व मृत्यु अनन्तर ही होता है यह कहना भी ठीक नही है क्योकि बन्धन देह से नहीं बल्कि मिथ्याज्ञानजन्य देहाभिमान से होता है। ज्ञान प्राप्त होने के बाद देहाभिमान नही रहता तथा देहाभिमान के नाश को ही आत्मा का अशरीरत्व कहते हैं। जो इसी जन्म में ही लहोता है। देह की प्राप्ति पाप पुण्य से होती है देह की मुक्ति पाप पुण्य के क्षय से होगी यह भी नही कह सकते क्योंकि पाप और पुण्य आत्मा के बन्धन के कारक तभी होंगे जब आत्मा के द्वारा किये जायें। परन्तुं आत्मा तो निष्क्रिय है तथा पाप और पुण्य भी मिथ्याज्ञान जन्य अहंकार के कारण होते हैं। शरीर को पाप और पुण्य के कारण कहना और फिर पाप और पुण्य को शरीर प्राप्ति का कारण कहना यह अन्योन्याश्रय होगा। जैसे बीज और अंकुर बीज से अंकुर तथा अंकुर से बीज। उसी प्रकार पाप और पुण्य तथा शरीर को अनादि कहना कि शरीर से पाप और पुण्य है पाप और पुण्य से शरीर है यह भी ठीक नहीं है क्योंकि बीज विशेष के द्वारा जो अंकुर पैदा होता है, उस अंकुर से वही बीज विशेष पैदा नही होता, बल्कि एक नया बीज पैदा होता है। अतः अनादित्व की कल्पना मिथ्या है। आत्मा में धर्म, अधर्म पाप पुण्य आदि का लेशमात्र भी समावेश नही होता।

6.11 आत्मविषयक अहंकार प्रतीति का गौणत्व विचार

यद्यपि अद्वैतवेदान्त की परम्परा में जगत् का उपादान कारण और निमित्त कारणब्रह्म

है। तथापि ब्रह्म के निर्गुण और निष्क्रिय होने के कारण वेदान्त मत में आत्मा अकर्ता है आत्मा में कर्तृत्वादि नहीं है आत्मा में कर्तृत्वादि की कल्पना अहंकार रूप है मिथ्याज्ञानजन्य है। इसलिये आत्मा के विषय में अहंकार की प्रतीति गौण है न कि मिथ्या यह कहना भी उचित नही है। क्योंकि मुख्यत्व और गौणत्व का भेद तो दो प्रसिद्ध वस्तुओं में होता है। जैसे पुरुष और सिंह में। अहं की प्रतीति आत्मज्ञान के रहते हुए नहीं होती, बल्कि आत्मज्ञान के अभाव में या अविद्या की स्थिति में होती है। आत्मा और अनात्मा के भेद के ज्ञाता को भी देहाभिमान या अहंप्रत्यय का अवभास आत्मज्ञान के विस्मृत हो जाने पर ही होता है। कोई भी ज्ञानी पुरुष आत्मा के लिए अहं का प्रयोग ज्ञान काल में नहीं करता। देहाभिमान अविद्या के ही कारण होता है, और अविद्या के नाश हो जाने पर इसी जीवन में ही अशरीरत्व की प्राप्ति भी हो जाती है। ब्रह्म प्रतिपादक श्रुति के श्रवण के अनन्तर भी मनन और निदिध्यासन भी अपेक्षित होती है। इसलिये ब्रह्मज्ञान के उपरान्त भी क्रिया होती है यह जिज्ञासा नही करनी चाहिये क्योंकि ये मनन और निदिध्यासन भी ब्रह्मज्ञान के पूर्व ही होते हैं। अतः स्वयं ब्रह्मज्ञान किसी क्रिया का साध्य नहीं है। ब्रह्मज्ञानी के लिये न क्रिया अपेक्षित है, न आवश्यक सभी विधिवाक्यों का, तथा सभी विधियों का तथा प्रमाणों का पर्यवसान, अहं ब्रह्मास्मि में हो जाता है। हेयोपादेय शून्य रूप ब्रह्म के स्वरूपज्ञान हो जाने के बाद सभी विषयों, प्रमाता, प्रमाणादि व्यवहारों का अन्त हो जाता है। सकल द्वैतभाव का नाश ही ब्रह्मस्वरूपावाप्ति है।

6.12 सारांश

तत्तुसमन्वयात् सूत्र वस्तुतः वेदान्तवाक्यों का अद्वैत निर्गुण निष्क्रिय सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म में तात्पर्य प्रतिपादन करता है जो इस सूत्र के सूत्रार्थ से ही स्पष्ट हो जाता है। परन्तु वादे वादे जायते तत्त्वबोधः न्याय के अनुसार आचार्यशंकर ने मीमांसकों के पूर्वपक्ष को समुचित् प्रकतार से उपस्थापन करके उनका निराकरण किया है जिसका इस पाठ में अत्यन्त संक्षेप में विचार किया गया है। वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म उपनिषद्बोध्य है। यद्यपि शास्त्र तथा जगत का कारणत्व ब्रह्म में सिद्ध है तथापि ब्रह्म का स्वरूप बोध शास्त्र से ही संभव है इस विषय में भी संभेप में विचार किया गया है। यद्यपि वेद क्रिया का प्रतिपादन करता है तथापि वेदान्त वाक्यों का सिद्धवस्तु स्वरूप ब्रह्म के प्रतिपादन में ही तात्पर्य है अतः वेदान्तवाक्यों का प्रतिपत्तिविधिविषयत्व कार निराकरण करते हुये भूतवस्तु विषयत्व की सिद्धि भी प्रकृत पाठ में की गई है। तथा ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप के प्रतिपादन के क्रम में ब्रह्म के काल्पनिक होने का निराकरण के साथ भूतवस्तु स्वरूप ब्रह्म का अनुत्पादत्व अविकारत्व असंस्कार्यत्व अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार तथा भाष्य के अनुसार सिद्धकरने का प्रयास इस पाठ में किया गया है। साथ ही सिद्धवस्तु ब्रह्म के ज्ञान किसी पुरुष के व्यापार के आधीन नही है न ही ब्रह्म ज्ञान कोई मानसी क्रिया है इत्यादि विषयों को यथाभाष्य सिद्ध किया गया है। ब्रह्म स्वरूपप्रतिपादक वाक्यों कि विधिरूपता का निराकण कर ब्रह्मज्ञान में विधिनिषेध वाक्यों की निरपेक्षता सिद्ध किया गया है। वस्तुतः आत्म स्वरूप ब्रह्म तथा ब्रह्म प्रतिपादक वेदान्त वाक्यों को विधि के रूप में स्वीकार करना तत्समन्वयात् इस वेदान्तसूत्र का प्रयोजन ही नही है अपितु वेदान्त वाक्यों का विधि निषेध प्रतिपादन में तात्पर्य नही है यह सिद्ध करना तथा आत्मा के अकर्तृत्वादि स्वरूप का व्यवस्थापन करना है। आत्मा में अहं अभिमान कर्तृत्वादि का भान अविद्या के कारण होता है जिसका अविद्या के नाश से सकल अभिमान का नाश होता। इस प्रकार प्रकृत पाठ में ब्रह्म के प्रतिपादक वेदान्तवाक्यों का ब्रह्म में समन्वय रूप इस पाठ में आचार्य शंकर के

अनुसार विषय वस्तु का सम्यक् उपपादन किया गया है। अध्येता इससे लाभान्वित हों यही कामना है।

6.13 उपयोगी पुस्तकें

- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, पूर्णानन्दी व्याख्या सहिता, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, आफिस विद्याविलास, प्रेस गोपाल मन्दिर, बनारस
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका सहित, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, चतुःसूत्री स्व. डॉ रमाकान्त त्रिपाठी, उत्तरप्रदेश, हिन्दी संस्थान, महात्मागांधी मार्ग, लखनऊ
- ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, रत्नप्रभा भाषानुवाद सहित, अच्युत् ग्रन्थमाला, काशी
- चतुःसूत्री ब्रह्मसूत्र, कैलाश आश्रम ब्रह्म विद्यापीठ, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

6.14 बोधप्रश्न

एकवाक्यात्मक बोध प्रश्न

1. तत् पद् का क्या अर्थ होता है।
2. तत्तु समन्वयात् इस सूत्र में कितने पद हैं
3. वेदान्तवाक्यों का समन्वय किस अर्थ में किया है।
4. तत्तुसमन्वयात् सूत्र में शास्त्र का वर्ण्यविषय क्या है।
5. मीमांसकों के मत में शास्त्र का वर्ण्यविषय क्या है।
6. वेदान्तवाक्य की अनर्थकता क्यों है।
7. उपासना का क्या अर्थ है।
8. वेदान्ती ब्रह्म में क्रिया की संभावना क्यों नही स्वीकारते।
9. पूर्वपक्षी त्वम् व्छ पद का अर्थ क्या मानते हैं।
10. ब्रह्मज्ञान का फल क्या है।
11. ब्रह्म का ज्ञान किससे होता है
12. वेद के कितने विभाग हैं
13. वेदान्तवाक्यों का प्रयोजन देवतादि के स्वरूप का प्रकाशन स्वीकार क्यों स्वीकार नही किया गया है
14. प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विषय क्या होता है।
15. पूर्वपक्षी तत् और त्वम् पद का क्या अर्थ किया है।
16. मनो ब्रह्मेति उपासीत आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः में ब्रह्म के रूप में किसकी उपासना की गई है।
17. विशिष्ट क्रियायोग क्या है।
18. ब्रह्मज्ञान को संपद्रूप क्यों नही माना जा सकता।
19. वेदान्ती ब्रह्म को उपासना का विषय क्यों नहीं मानते

20. मोक्ष क्या है।
21. शास्त्र ब्रह्म को किस रूप में प्रतिपादित करता है।
22. संस्कार्य का क्या अर्थ है?
23. विधि का विषय क्या होता है।
24. आत्मा के बोध के लिये उपनिषद् अपेक्षित क्यों नही है
25. पुरुष का संसारित्व नाश कब होता है
26. अशरीरत्व किसे कहते हैं।
27. पाप पुण्य का कारण क्या है?
28. आत्मा में कर्तृत्वादि अभिमान कैसे होता है।
29. मुख्यत्व और गौणत्व का भेद कहां होता है।
30. अहं की प्रतीति का क्या कारण है।
31. विवेकज्ञानी को अहं प्रत्यय का अपभास क्यों होता है।

बहुविकल्पात्मक बोध प्रश्न

अविकार्योऽयमुच्यते श्रीमद्भगवद्गीता।?

सत्यासत्य विचारात्मक बोध प्रश्न

1. सांख्य मत में प्रकृति परिणामी नित्य है
2. वेदान्त मत में आत्मा तो कूटस्थ नित्य है
3. कार्य मानने से मोक्ष अनित्य हो जायेगा।
4. ब्रह्मज्ञान और मोक्ष के मध्य कोई कार्यान्तर नहीं ह
5. ब्रह्मात्म्यैकत्व ज्ञान संपद्रूप नही है
6. शास्त्रों का प्रयोजन ब्रह्म को यह ब्रह्म है, या यह ब्रह्म है यह बताना कदापि नही है।
7. ब्रह्मज्ञान में कोई कार्य अपेक्षित नही है।
8. सर्वगत होने के कारण ब्रह्म सर्वदा सर्वत्र प्राप्त है विभु है व्यापक है।
9. आत्मा में कोई क्रिया या परिवर्तन सम्भव होता तो आत्मा में अनित्य आ जायेगा।
10. आत्मा के नित्यत्व का प्रतिपादन स्मृति भी करती है कि अविकार्योऽयमुच्यते श्रीमद्भगवद्गीता।?
11. लोकसिद्ध अग्नि का ज्ञान न तो पुरुष के आधीन है न ही विधि विहित है। अपितु वस्तुतन्त्र है।
12. ब्रह्म परिनिष्ठितवस्तु होने के कारण हेयोपादेय शून्य है।
13. क्रिया पुरुष के चित्त व्यापार के अधीन होती है,
14. ज्ञान वस्तुस्वरूप के आधीन होता है।

6.15 बोधप्रश्न के उत्तर

एकवाक्यात्मक बोध प्रश्न के उत्तर

2. वेदान्त वाक्यों से ही जगत् की सृष्टि, स्थिति, लय आदि के कारण रूप ब्रह्म का ज्ञान होता है,
3. वेद के पाच विभाग हैं विधि, निषेध, अर्थवाद, मन्त्र और नामधेय।
4. वेदान्तवाक्यों का प्रयोजन देवतादि के स्वरूप का प्रकाशन स्वीकार किया जाय तो भी वेदान्तवाक्य क्रियाविधि या उपासना विधि के अंग हो जायेंगे।
5. सिद्धवस्तु तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषय होता है।
6. तत् और त्वम् पद देवता और कर्ता की स्तुति के लिये प्रयुक्त हैं।
7. **मनो ब्रह्मेति उपासीत आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः** इस वाक्य में मन को या सूर्य को ब्रह्म रूप में मानकर प्रतीकोपासना की गई है।
8. वायु और प्राण दोनों में समानरूपता के कारण अभेदमानकर उपासना करना विशिष्ट क्रियायोग है।
9. संपद्रूप ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करने से तत्वमसि अयमात्मा ब्रह्म इत्यादि वाक्यों में साक्षात् एकत्व का प्रतिपादन की निवृत्ति हो जायेगी।

10. नेदं यदिदमुपासते आदि श्रुति विरूद्ध होने के कारण ब्रह्म को उपासना का विषय नहीं माना जा सकता।
11. अविद्या की ऐकान्तिक आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है।
12. शास्त्र स्पष्टरूप से ब्रह्म को प्रत्यगात्मा के रूप में या अविषय के रूप में ही प्रतिपादित करता है।
13. संस्कार्य का अर्थ है किसी भी वस्तु में विशेष गुण का आधान करना। या उस वस्तु के दोष को हटाना।
14. इसलिये लोकसिद्ध अग्नि का ज्ञान ज्ञान है क्रिया नही। अतः ज्ञान को मानसी क्रिया कहना अयुक्त है।
15. विधि का विषय वही हो सकता है, जो हेय हो या उपादेय हो,
16. आत्मा के अहं प्रत्यय के विषय होने से आत्मा के बोध के लिये उपनिषद् अपेक्षित नही है
17. क्योंकि ब्रह्मज्ञान होने के बाद पुरुष का संसारित्व नही रहता।
18. देहाभिमान के नाश को ही आत्मा का अशरीरत्व कहते हैं।
19. परन्तुं आत्मा तो निष्क्रिय है तथा पाप और पुण्य भी मिथ्याज्ञान जन्य अहंकार के कारण होते हैं।
20. आत्मा में कर्तृत्वादि की कल्पना अहंकार रूप है मिथ्याज्ञानजन्य है।
21. मुख्यत्व और गौणत्व का भेद तो दो प्रसिद्ध वस्तुओं में होता है। जैसे पुरुष और सिंह में।
22. अहं की प्रतीति आत्मज्ञान के रहते हुए नहीं होती, बल्कि आत्मज्ञान के अभाव में या अविद्या की स्थिति में होती है।

आत्मा और अनात्मा के भेद के ज्ञाता को भी देहाभिमान या अहंप्रत्यय का अवभास आत्मज्ञान के विस्मृत हो जाने पर ही होता है।

बहुविकल्पात्मक बोध प्रश्न के उत्तर

सत्यासत्य विचारात्मक बोध प्रश्न के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. सत्य
11. सत्य
12. सत्य
13. सत्य
14. सत्य